मूल्य : 20 रुपये

# धर्मायण

अंक 97
श्रावण, 2077 वि. सं.

( धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका )

## नाग-पूजन-विशेषांक

## स्वास्थ्य के क्षेत्र में महावीर मन्दिर के नये कदम

दिनांक 26 जून, 2020 को महावीर आरोग्य संस्थान में तीन अतिरिक्त डायलिसिस उपकरण का उद्घाटन होने केसाथ कुल उपकरणों की संख्या 7 हो गयी है।

# धर्मायण

Title Code- BIHHIN00719

## आलेख-सूची


नाग-पूजन की परम्परा एवं प्रवृत्ति (सम्पादकीय आलेख) 3

1. नाग: देवत्व की अवधारणा और पूजा-परम्परा
-डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू 5

2.'नरपतिजयचर्या' की एक पाण्डुलिपि में नागचक्रों का अंकन
-संकलित 11

3. बारह महीनों में विशेष है श्रावण मास
-श्री जगन्नाथ करंजे 13

4. विषहरापूजा -पं० शशिनाथ झा 16

5. मगध की संस्कृति में नागपंचमी -श्री उदय शंकर शर्मा 23

6. मिथिला में नाग-पूजा का लोकविधान
-श्रीमती रंजू मिश्रा 26

7. देश-विदेश में सर्प-पूजा -डा. वीरेन्द्र झा 31

8. शेषत्व-समीक्षा - डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य 34

9. शिवतत्त्व-मीमांसा -श्री अरुण कुमार उपाध्याय 38

10. शूर्पणखा प्रकरण का यथार्थ -आचार्य किशोर कुणाल 46

11. अध्यात्म-रामायण से राम-कथा -आचार्य सीताराम चतुर्वेदी 57

12. विश्वकवि तुलसीदास का लोक-समन्वय और जीवन-दृष्टि
-डॉ. एस.एन.पी. सिन्हा 64

13. भारतीय गुरु-शिष्य-परम्परा पर पाश्चात्य संस्कृति का आघात
-डॉ काशीनाथ मिश्र 70

14. वैशाली में 'सावनी-घरी' लोकपर्व -श्री अभिषेक राय 73

मातृभूमि-वंदना, मन्दिर समाचार, व्रत-पर्व, रामावत संगत से जुड़िए
आदि स्थायी स्तम्भ 75


पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।


*धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका*

**अंक : 97**
**श्रावण, 2077 वि. सं.**
6 जुलाई-3अगस्त, 2020 ई.

**प्रधान सम्पादक**
आचार्य किशोर कुणाल

**सम्पादक**
**भवनाथ झा**



**पत्राचार :**
**महावीर मन्दिर,**
**पटना रेलवे जंक्शन के सामने**
**पटना- 800001, बिहार**
**फोन : 0612-2223798**

मोबाइल : 9334468400(WhatsApp)
E-mail: mahavirmandir@gmail.com
Web:https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

सम्पर्क :
https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/contact-us/


**मूल्य : बीस रुपये**

# पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक सख्या 96, आषाढ़, 2077 वि.सं.)

निश्चित ही गुरुतत्त्व पर सभी आलेख वर्तमान परिवेश में अत्यन्त श्लाघनीय पथप्रदर्शक दिशानिर्देशक है। इसका सम्पूर्ण श्रेय सम्पादक महोदय को ही प्राप्त है। क्योंकि उन्हीं के विषयचयनानुकूलनिदेशाधीन लेख मुद्रित है। सर्वसुलभ सुगम भाव में लेखसंशोधन भी आदरणीय है। उनके कुशलसम्पादकत्व पर विश्वास भी था। तदर्थं बहुश: धन्यवादा:

*-श्रीनिवास शाण्डिल्य*

गुरुतत्त्वविशेषांक के सभी आलेख उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हैं। इस सुन्दर संयोजन के लिए सम्पादकजी का बहुत बहुत आभार एवं उन्हें बधाई।

*-प. शशिनाथ झा*

गुरुतत्त्व विशेषांक एक विश्वकोष है। बहुत सी नयी जानकारी संग्रह के लिए सम्पादक का आभार।

*-श्री अरुण कुमार उपाध्याय*

गुरुतत्त्व विशेषांक के लिए आदरणीय संपादक जी को साधुवाद! आपके सार्थक श्रम को भी बहुत-बहुत धन्यवाद! वाकई यह अंक अत्यंत उपयोगी, ज्ञानवर्धक और संग्रहणीय है । मंगलकामना।

*- प्रो. श्रीकांत सिंह,*
*हिन्दी विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना -20.*

सादरं नति:। समादरणीय प्राज्ञवर सम्पादक महोदय, धर्मायण को प्रवेशांक से ही खरीदकर पढ़ना, प्रतिक्रिया देना, लेख लिखना और हर अंक का संग्रह करना मेरी अभिरुचि का अभिन्न अंग रहा है।

सन् 1999 में मैं केन्द्रभारती (मासिक : जोधपुर) के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध हो गया।

**आपको यह अंक कैसा लगा?इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल** mahavirmandir@gmail.com **पर अथवा** whatsApp. **सं. +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।**

**'धर्मायण' का अगला अंक कृष्ण-भक्ति विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। इस अवसर पर सनातन धर्म, लोक-जीवन अथवा धार्मिक-साहित्य में कृष्ण-भक्ति की अवधारण से सम्बन्धित आलेख आमन्त्रित हैं।**

मेरे दुर्भाग्य से सन् 2010 में समुचित देखरेख के अभाव में मेरे व्यक्तिगत पुस्तकालय की सभी पुस्तकों को चूहे और दीमक पढ़ गये। बहुत दिनों तक मेरा लिखना तो दूर, पढ़ना भी बन्द हो गया। अब धीरे-धीरे पुन: जागृति आई है। धर्मायण के पुराने अंक भी हमारे लिए अनमोल धरोहर हैं। सम्भव हो तो पुराने सभी अंकों का 'डिजिटलाइजेशन' करवायें, अन्यथा स्वच्छता के साथ 'स्कैनिंग' तो करवा ही लें। पुराने कौन-कौन से अंक उपलब्ध हैं? उन्हें मँगाने हेतु रजिस्टर्ड डाकखर्च सहित कुल कितना भुगतान करना होगा? मुझे एक सुपात्र को दान करने की इच्छा हो रही है।

सद्य:प्रकाशित गुरुतत्त्वाङ्क को पढ़ने के बाद प्रतिक्रिया भेजूँगा। शेष शुभ। स्नेहाधीन,

*सन्दीपकुमार आचार्य, रायपुरा, गोपालपुर, खैरा, जमुई (बिहार) 811317*

अंक-संख्या 95 में प्रकाशित 'शंबूक की निरपराधता' एवं 94 अंक में प्रकाशित 'सीता निर्वासन का विमर्श' इन दोनों ही विषयों पर आम जनमानस के बीच विभिन्न प्रकार की भ्रांतियां थी। जिनको दूर करने के लिए इनमें जो तथ्य दिए गए हैं वह भ्रम दूर करने वाले और विश्वसनीयता को बढ़ानेवाले हैं। सीता का हरण होने

शेष अंश पृ. 33 पर

सम्पादकीय आलेख

भारतीय परम्परा में

# नाग-पूजन की परम्परा एवं प्रवृत्ति

-भवनाथ झा

भारतीय परम्परा में वृक्ष, नदी, पर्वत आदि जैविक एवं अजैविक वातावरण सारी वस्तुएँ पूजनीय हैं। यह हमारी प्रकृति पूजा है, जो सनातन संस्कृति को उदात्त बनाती है। इनमें पूज्य जैविक पदार्थों में नागपूजा की परम्परा सम्पूर्ण भारत में व्यापक स्तर पर दिखाई पड़ता है। नाग एवं सर्प सरीसृप वर्ग का जीव है, जिनमें कुछ प्रजातियों में विष भी होता है, अधिकांश प्रजातियाँ विषहीन होती हैं। लेकिन नाग का एक अलौकिक रूप भी भारतीय परम्परा में विद्यमान है। वे शेषनाग के रूप में पृथ्वी को थामे हुए हैं। शेषनाग की शय्या पर भगवान् विष्णु शयन करते हैं। विष्णुपुराण के सातवें पटल में विष्णु के शेषावतार का वर्णन विस्तार से कहा गया है।

सम्पूर्ण भारत में नागपूजा से सम्बन्धित मन्दिर पाये जाते हैं। हिमालयीय क्षेत्र के गढ़वाल में शेषनाग को 'पाण्डुकेश्वर', रतगाँव में 'भेकल नाग', तालौर में 'संगल नाग' तथा मरगाँव में 'बानपा नाग' के रूप में पूजा जाता है। सम्पूर्ण हिमालय के क्षेत्र में 'कैलंग नाग' प्रधान नागदेवता माने जाते हैं। मान्यता है कि वे वैदिक 'अहि' के समान वर्षा को नियंत्रित करनेवाले देवता है, अतः सुखकर जलवायु के लिए उनकी आराधना की जाती है। कांगड़ा में नागदेवता का प्राचीन मन्दिर है, जिसमें 'बघसु नाग' की पूजा होती थी। 19वीं शती में ही यह मन्दिर 'बघसुनाथ शिवमन्दिर' के रूप में परिणत हो गया। यहाँ मान्यता है कि नाग पशु एवं झरनों के देवता हैं। काश्मीर एवं नेपाल की लोक-मान्यता है कि नयी ब्याई हुई गाय का पहला दूध नागदेवता को अर्पित किया जाता है और वे अपने पशु को नागदेव के द्वारा रक्षित मानते हैं। हिमालय क्षेत्र में ही 19वीं शती के मध्य में "एन इन्ट्रोडक्शन टू द पोपुलर रेलिजन एण्ड फॉकलोर ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया" नामक पुस्तक में विलियम क्रुक्स ने 'रोतंग पास' के एक मन्दिर में जीवित नाग की पूजा होने का भी उल्लेख किया है।

नेपाल की कथाओं में नागराज कर्कोटक का उल्लेख आया है जो नागवास नामक झील में निवास करते हैं। ये जल को प्रदूषित होने से बचाते हैं तथा वातावरण को दूषित करनेवालों को अपने विष के प्रभाव से मार देते हैं। नेपाल में एक नागकन्या देवी का मन्दिर है, जिसमें देवी का आसन कछुआ है। भारतीय लोककथाओं में भी गन्धमालिन् की पुत्री विजयावती का उल्लेख नागकन्या के रूप में है। विलियम क्रुक्स ने लिखा है कि यूरोप में भी मेल्युसिना की लोकगाथा इसी प्रकार की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमालयीय क्षेत्र में नागदेवता को पशु, जल तथा वायुमण्डल की स्वच्छता से सम्बन्धित देवता माना गया है। अतः काश्मीर के क्षेत्र में जितने नागदेवता के मन्दिर थे वे सभी एक कृत्रिम तालाब के बीच बनाये गये थे और चारों ओर नाग के अंकन किये गये थे। अबुल फजल ने लिखा है कि काश्मीर में नागदेवता के लगभग सात सौ अंकन उपलब्ध होते हैं। हिमालयीय क्षेत्र के अतिरिक्त विलासपुर में नागदेवता के प्राचीन मन्दिर का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत में भी अनेक मन्दिरों के द्वार पर नागों का अंकन किया गया है तथा उन्हें मन्दिर की वास्तु का रक्षक देवता माना गया है।

ईसा की सातवीं शती में भी ह्वेन्त्सांग ने सांकाश्या नगरी, वर्तमान फर्रुखाबाद जिला में नागदेवता के एक मन्दिर का उल्लेख किया है और उन्होंने लिखा है कि इस मन्दिर में 'श्वेतकर्ण नागदेव' की पूजा होती है, जो अच्छी वर्षा एवं कृषि से सम्बन्धित देवता माने जाते हैं। जनरल कनिंघम ने इस संकिशा नगरी के इस स्थल की पहचान उस तालाब के रूप में की है, जो पुरावशेष के दक्षिण में अवस्थित है। यहाँ के नाग की पूजा 'कारेवर' के रूप में होती है और इस तालाब का नाम 'कँडैया ताल' है। कनिंघम ने उल्लेख किया है कि यहाँ श्रावण मास में प्रतिदिन तालाब में दूध अर्पित किये जाने की परम्परा है, जो वास्तव में नागदेवता को अर्पित किया जाता है। ह्वेन्त्सांग ने रामग्राम में भी एक नागह्रद का उल्लेख किया है।

बुकानन ने भागलपुर में एक चट्टान का उल्लेख किया है, जिसमें एक छिद्र है। उस छिद्र में एक सर्प का निवास होता है। इस सर्प की पूजा करने के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं। बुकानन को बताया गया कि इस नाग से किसी को कोई खतरे का अनुभव नहीं हुआ है। लोक समझते हैं कि नागदेव लोगों की भाषा समझते हैं और यदि कोई बच्चा इस छिद्र पर गिर भी जाये तो उसे वे डँसते नहीं हैं।

मथुरा में भी पाँच फणवाले एक नागमूर्ति का उल्लेख एफ. एस. ग्राउजे ने "मथुरा मेमोआयर्स" में किया है। यह 'जैत' नामक एक तालाब के समीप है। कहा जाता है कि इस नागदेवता की पूँछ वहाँ से सात मील दूर स्थित वृन्दावन तक धरती के नीचे होकर चली गयी है।

कनिंघम ने इलाहाबाद के निकट स्थित कौशाम्बी में एक नागगुफा का उल्लेख किया है तथा उस गुफा के प्रति लोगों की अटूटू धार्मिक आस्था बतलायी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नेपाल सहित सम्पूर्ण भारत में नाग को प्राचीन काल से देवता माना गया है तथा विभिन्न परम्पराओं का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि ये जल-संरक्षण, वायु-संरक्षण के देवता हैं। वे दुधारू पशुएँ गाय, भैंस आदि की रक्षा करते हैं। समुचित वर्षा कराकर कृषि-कार्य की उन्नति करते हैं। अतः यह उचित ही लगता है कि श्रावण मास में जब कृषिकर्म आरम्भ होता है, समुचित वर्षा की आवश्यकता होती तब नागदेव की पूजा की जाती है।

मिथिला, मगध, बंगाल आदि के सांस्कृतिक क्षेत्र में विषहरा के रूप में नागपूजा का अलग स्वरूप है। मिथिला में भी लोकपर्व के रूप में जब कारिख एवं गोरैया की पूजा लोकदेवता के रूप में सावनी घरी पर्व के रूप में की जाती है तो इन्हें भी उत्तर राज से आये हुए पशुरक्षक देवता के रूप में देखा जाता है। यह सम्भावना बनती है कि हिमालय के क्षेत्र में जिस पशुरक्षक नागदेव की पूजा होती है, उन्ही का यह मानवीकृत रूप हो, जो घोड़े पर सवार होकर पशुओं की रक्षा करते हैं। और चूँकि नागदेवता भगवान् शिव के आभूषण के रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे नागेश्वरनाथ हैं, पशुपति हैं; अतः नागदेव के भी आराध्यदेव भगवान् शिव इस श्रावण मास में पूज्य हैं। वैदिक रुद्र के रूप में भगवान् शिव एक ओर अपने रौद्र रूप में विद्युत्, आँधी, मेघगर्जन के देवता हैं तो दूसरी ओर वर्षा से पृथ्वी को संतृप्त कर औषधियों के जन्मदाता है, वैद्यनाथ हैं।

इस श्रावण मास में हम देवाधिदेव महादेव तथा उनके आभूषण नागदेव को नमन।

***

# नाग : देवत्व की अवधारणा और पूजन-परम्परा

डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू*

**नागपूजन-की परम्परा भारत में ही नही, विदेशों में भी प्रसृत है। बौद्ध, जैन तथा वैदिक परम्पराओं में विभिन्न रूप में नाग-पूजा होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस परम्परा की जड़ें सभ्यता के आदिकाल से हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। श्रावण मास नाग-पूजा के लिए लगभग सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। यहाँ नागपूजा की व्यापकता के साथ राजस्थान की लोक-परम्परा में नाग-पूजा विषय पर प्रख्यात लेखक, सम्पादक एवं अनुवादक डा. श्रीकृष्ण जुगनू का आलेख प्रस्तुत है।**

एक रहस्यमय प्राणी के रूप में नाग सदियों से मानव समुदाय के बीच विद्यमान है। विषधारी होने के कारण जहाँ इंसान ने उसे अपना जानलेवा माना, वहीं पहचान का कोई निश्चित चिह्न नहीं होने से उसकी आयु की गणना करने में परेशानी हुई तो उसको दीर्घायु मानकर कई मान्यताओं को खड़ा किया। इनमें नाग का सहस्रवर्षीय होना, शिव की कृपा से इच्छित रूप धारण करना, उसके अपने नागलोक का होना, देवत्व प्राप्त करना आदि मान्यताएँ मुख्य हैं। यद्यपि वैज्ञानिक अध्ययन के फलस्वरूप कई नई मान्यताएँ सामने आई हैं किन्तु नाग के प्रति आस्था की पगडंडियों पर लोकमानस आज भी गतिशील लगता है।

नेपाल से प्राप्त नागमूर्ति

बहुत प्राचीनकाल से ही नाग के सम्बन्ध में जनमानस में अनेक प्रकार की बातें प्रचलित रही हैं। ग्रीक के मिथक बताते हैं कि सर्वप्रथम वायु के झोंकों के बीच जो देवी प्रकट हुई, उससे लिपटकर सृष्टि करनेवाला नाग ही था, किन्तु उसके विषदन्त अपनों के लिए ही घातक हो गए। जो भी उसके दन्त से काल के ग्रास बने, उनके पुनर्जीवन के लिए अमृत का उपाय खोजा गया। महाभारत के कथानकों में गरुड़ के अमृत-पान की धारणा दिखाई देती है, जिसमें ईसा की प्रारम्भिक सदियों में जम्बूद्वीप में प्रचलित रही मान्यताओं की झलक स्पष्ट प्रतीत होती है। यही

*40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर, उदयपुर 313001(राजस्थान), मेल : skjugnu@gmail.com

विचार मिस्र यूनान, कजाकिस्तान आदि में भी रहा, जिसके फलस्वरूप वहाँ अमृत पात्र के साथ गरुड़ की प्रतिमाएँ भी प्राप्त होती हैं। सर्प की प्रतिमाएँ भी कम नहीं मिलती। अन्य देवताओं के साथ और अकेली भी।

सृष्टि का जो विवरण पुराणों में प्राप्त होता है, उनमें काश्यपीय सृष्टि में सर्प, उरग. नाग आदि को भी ऋषि संतान स्वीकार किया गया है। इसी कारण वे देवतुल्य आदर के अधिकारी बने। वायुपुराण, मत्स्यपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि में सृष्टि के निरूपण का विवरण मिलता है। इन्हीं में नाग और गरुड़ का वैर भी वर्णित है। गजेन्द्रमोक्ष-जैसे मूर्तिशिल्प के मूल में यह वैर प्रदर्शित किया जाता था और बाद में नाग का स्थान मगर ले लिया। यही वैर बाद में योनिवैर के नाम से गण-मेलापक की परम्परा में उपन्यस्त किया गया और सर्प-नकुल या गरुड़-विषधारी वैर के नाम से जाना गया। शिवधर्मपुराण और शिवधर्मोत्तरपुराणों में नागलोक का विवरण आता है, जो शिवलोक के नीचे माना गया है।

नागस्तम्भ, प्रयाग संग्रहालय

इसी प्रकार की नागयोनि की मान्यता जैन-ग्रन्थों में मिलती है और वहाँ व्यन्तर देवयोनि के रूप में स्वीकार्य रही हैं। नागों

बोधगया का मुचलिंद सरोवर

की अपनी वंशावली होने की मान्यता लोक में प्रचलित है, जिसके वाचन के लिए कदाचित् 'नागमगा' जाति की पहचान थी।

बौद्ध-ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि जहाँ भी चैत्य होते थे, उनकी सुरक्षा के लिए प्रहरी रूप में नाग का चित्रण किया जाता था। साँची के स्तूप के रक्षक के रूप में नाग का नामोल्लेख मिलता है। यह संयोग ही है कि तब नागों को उदकनि:सृत माना जाता था। सम्राट् मान्धाता जब उत्तरकुरु की राजधानी सुदर्शनगर में गए तो उनको वहाँ पर पञ्चरक्षात्मक पंक्ति के तहत पानी से निकलते हुए 'एरापत' नागदेवताओं की रक्षापंक्ति की प्राप्ति हुई। भरहुत के स्तूप में जल से निकलते हुए ऐसे नागराज को सपरिवार बोधिद्रुम की पूजा करते हुए उत्कीर्ण किया गया है। इलाहाबाद के संग्रहालय में सुरक्षित स्तम्भ पर एक पुष्पित रचना में बरगद के नीचे पाँच फन वाले मुचलिन्द नागराज की मूर्ति को उकेरा गया है

और उस पर इस आशय का लेख भी गुदा हुआ है। उसको बुद्ध की पादुका और बोधिमण्ड या वेदिका की सुरक्षा करते हुए दर्शाया गया है। एक कथा के अनुसार भयानक आँधी के समय मुचलिन्द ने बुद्ध की रक्षा अपना फन फैलाकर की थी। साँची, अमरावती और नागार्जुनकोंडा के स्तूपों पर यह कथा यथारूप उत्कीर्ण की गई मिलती है। नागराज चक्रवाक आकृति दक्षिणी तोरणद्वार पर उत्कीर्ण की गई है। साँची में नाग-नागिन की मूर्तियाँ दक्षिणी द्वार के बायीं ओर है जो पुरुषाकृति रूप में है और स्तूप की पूजा कर रही है।

नाग-चक्र या नाग-कुण्डली

उक्त प्रमाणों से यह विदित होता है कि रक्षक देव के रूप नागों का शिल्पांकन करने की परम्परा बहुत पुराने समय से भारतीय जनजीवन में प्रचलित थी और फणाटोप के साथ नागराज को उत्कीर्ण किया जाता था। जैन मान्यताओं में पार्श्वनाथ की प्रतिमा को फणाटोप सहित उत्कीर्ण किया जाता है। उनके लिए सप्तफणा-जैसे विशेषण भी रहे हैं। बिजोलिया के चौहानकालीन शिलालेख में नाग की स्तुति आई है। चित्तौड़ के पास पठौली गाँव में प्राप्त राजा मान के 734 ई. के एक अभिलेख में आता है कि मानसरोवर की पाल पर मातोली नाग की स्थापना की गई थी, जिसकी स्तुति में कहा गया है कि समुद्र-मन्थन के दौरान थके मातोली सर्पराज ने यहाँ आकर विश्राम किया था।

इसी प्रकार एकाधिक फण, एकाधिक योनियों में नवकुली और अष्टकुली चक्रबन्धों में नागोचित रचनाओं का विवरण है। ये ही मान्यताएँ शिव के साथ वासुकि, नारायण का अनन्तनाग पर शयन, जनमेजय द्वारा नागसत्र-जैसी कथाओं और मान्यताओं के विकासक्रम में द्रष्टव्य है। गरुडपुराण में शेषनाग के अवतार लेने के प्रसंग आए हैं। वहाँ कहा गया है कि शेष नारायण के भक्त हैं और उनमें विष्णु, वायु तथा अनन्त इन तीन देवताओं का अंश विद्यमान रहता है-

**शेषः स एव विज्ञेयो भक्तो नारायणस्य च।**
**विष्णोर्वायोरनन्तस्य त्रिभिरंशैर्युतः सदा ॥**

(गरुडपुराण, ब्रह्मकाण्ड, 188)

सुमित्रा के अंश से जिन लक्ष्मण ने जन्म लिया शेष के अंश हैं और उनको शेषावतार कहा गया है। द्वापर में वे ही वसुदेव के पुत्र बलभद्र के रूप में रोहिणी से उत्पन्न हुए। इसी कारण कालान्तर में वीर गोगा चौहान, तेजा धोलिया, पाबूजी वीरवर जयमल मेड़तिया, कल्ला राठौड़ आदि को शेषावतार के रूप में लोकांचल में स्वीकार किया गया। धर्मराज देवनारायण को भी नागकुल से सम्बद्ध किया गया है। यह पौराणिक मान्यताओं का लोक सम्मान है अथवा लोक मान्यताओं का पौराणिकीकरण; किन्तु जनाश्रयी मान्यताओं का प्रसारण अवश्य है।

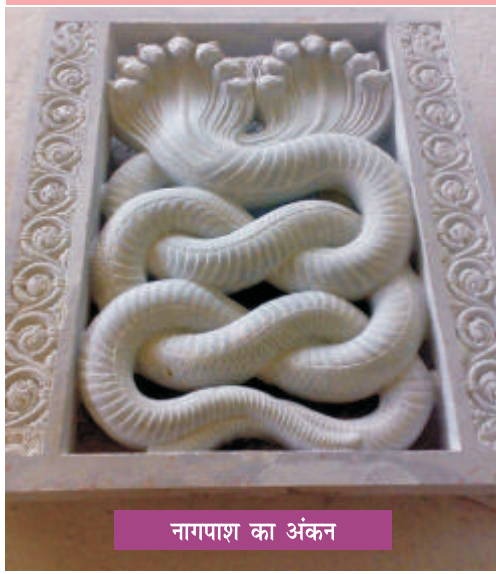

नागपाश का अंकन

नागों का निवास भूमि-विवर में होता है और बाँबी उनके निवास के रूप में ज्ञेय है। बाँबी वहीं पर होती हैं जहाँ कि भूमि जलार्द्र होती है। ऐसे में जल अथवा जल के समीप नाग के निवास की सहज मान्यता का विकास हआ। जहाँ सरोवर होते है, वहाँ स्तम्भों पर नागों को उत्कीर्ण किए जाने की परम्परा मिलती है। तन्त्र-साहित्य में ऐसे स्तम्भों को 'नागयष्टि' के नाम से निर्दिष्ट किया गया है। ये जलस्तर की सूचक भी होती थी। कभी नागों को यूप-खंब के रूप में भी बनाया जाता रहा था। मुनि सारस्वत, मनुकृत दकार्गल ग्रन्थों में बाँबियों के आधार पर भूमिगत जल शिराओं की खोज करने का रोचक विवरण मिलता है, जिसको वराहमिहिर और चक्रपाणि मिश्र ने भी लिखा है। नाग निवास के कारण ही किसी क्षेत्र को 'नागद' या 'नागदा' कहने की परम्परा भी स्वीकार की गई। सातवीं सदी में लिखित 'हर्षचरित' में नागक्षेत्र होने का रोचक विवरण आया है और नाग के साथ पुष्पभूमि के मुकाबले का वर्णन बाणभट्ट ने किया है। नाग विषधर होने से भयकारक है और मूषक मेंढ़क आदि उसके आहार हैं। आस्तिक मुनि, अगस्त्य, कश्यप आदि ने सर्पों, नागों के विषोपाय के रूप में जो लोक-मान्यताएँ खोजी, वे गारुडविद्या के नाम से जानी गई। कारण था कि गरुड को सर्पाहारी माना जाता है।

**नागपाश**

एक ऐसा पाश, जिसमें नागों का प्रयोग बाँधने के लिए हुआ हो, प्राचीन काल में युद्धों के दौरान शत्रु पक्ष को शिकस्त देने के लिए प्रयोग होता था। रामायण के लंकाकाण्ड के प्रसंग में नागपाश का वर्णन आता है, जिसको गरुड ही भेद सकते थे। हनुमान् इसके लिए खगेश या गरुड को लेकर आए थे।

कदाचित् अथर्ववेद में इसका सबसे प्राचीन वर्णन मिलता है जहाँ भोग या साँप जैसी कुण्डलाकृति बनाकर अपनी रक्षा शत्रु-सेना से करने का वर्णन आया है-

**भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परिवारय।**

(11, 9, 5)

युद्ध-विषयक शास्त्रों में नागव्यूह, सर्पव्यूह, व्यालव्यूह आदि नामों से भी विभिन्न व्यूहों का जिक्र मिलता है। वीरसिंहदेव के दरबारी मित्रमिश्र ने 'वीरमित्रोदय' के राजचक्र-लक्षण प्रकरण में व्यूहलक्षण में इसके प्रयोग को दर्शाया है। इसमें चारों ही प्रकार की सेना और सैनिकों का संयोजन होता था मगर 'कौतुकरत्न', 'कौतुकचिन्तामणि' आदि तन्त्र-ग्रन्थों में नागपाश का तान्त्रिक प्रयोग भी बताया गया है।

यह माया विद्या कही गई है, मध्यकाल में

इसपर कुछ ज्यादा ही यकीन किया जाता था, तभी तो तुलसी ने 'हनुमानाष्टक' में लिखा –

**रावण जुद्ध अजान कियो तब**
**नाग कि फाँस सबै सिर डारौ।**

आजकल के कुण्डलीवेत्ताओं ने ग्रहों की स्थितियों के अनुसार जातकों को भी नागपाश या कालसर्पदोष में बाँध दिया है। काव्यशास्त्र में नागपाश या उरगबन्ध, नागबन्ध के नाम से छन्दों के प्रयोग का वर्णन भी मिलता है। 'अलंकार-कौस्तुभ' और अन्यान्य छंद:शास्त्रों में इसका जिक्र भी मिलता है। (मानसोल्लास), मगर यह एक गाँठ-जैसी रचना होती है, जिसका सज्जा, सिंगार आदि के लिए भी प्रयोग मिलता है। स्थापत्य और प्रतिमा-शास्त्रों के अनुसार भी नागपाश का अनेकत्र प्रयोग आरेखन, उत्कीर्णन के रूप में मिलता है। लोक में ऐसी प्रतिमाओं को देखकर बाधा-पाशों के बन्ध से मुक्ति की मनौतियाँ भी ली जाती है, मगर यह एक स्थापत्य रचना रही है। पूर्व से लेकर पश्चिम और उत्तर से लेकर दक्षिण तक विविध स्वरूपों में इसका न्यास मिलता है। इसके वैविध्य पर अनुसन्धान अपेक्षित है।

## बाणदेवी या शक्तिधारी नागिन का आयुध

हमारे यहाँ आयुधों के पूजन की पुरानी परम्परा है। नवरात्र या शक्तिपूजा के पर्व के अवसर पर आयुधों की पूजा की जाती है। होली, दीपावली पर भी ऐसी पूजाओं की परम्परा देखने में आती है, मगर खास तौर से शक्तिपूजा के दिनों में यह दिखाई देती है।

राजमार्तण्ड (10वीं सदी) में राजाओं, सामन्तों, सैनिकों द्वारा बल की वृद्धि के उद्देश्यं से इस प्रकार की नीराजन विधि का वर्णन आया है, किंतु बहुत पहले वराहमिहिर ने बृहद्योगयात्रा, बृहत्संहितादि ग्रन्थों में इस प्रकार से आयुधादि की पूजा का वर्णन किया गया है। यही वर्णन विष्णुधर्मोत्तर, कालिकापुराण आदि में आया है।

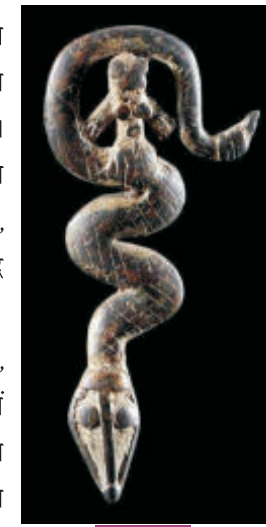
नागबाण

भारत ही नहीं, विदेशों में भी राजवंशों में अपने-अपने कुल के आयुध की मान्यृता रही है, कोई तलवार को पूजता है तो कोई कटार, कोई छुरी या असिपुत्रिका तो कोई कुन्तादि को। इनको देवी के रूप में माना जाता है, जाहिर है ये शक्ति के प्रतीक हैं

बाण की पूजा भी होती है। कुछ राजवंशों में बाण को माता या देवी के रूप में भी पूजा जाता है। मेवाड भी इससे अलग नहीं है। यहां आयुधों की सवारी तक निकाली जाती है, मेवाड में तो खड्ग की सवारी आयोजित होती है ही।

यह परम्परा यहीं पर नहीं, विदेशों में भी रही है। वहाँ भी बाण को देवी के रूप में जाना जाता है। एक चित्र में नाग पर देवी को विराजित किया गया है, यह नाग बाण के रूप में है। इसकी पहचान **'गोडेस ऑफ स्नेक'** के रूप में की गई है, यह बाणरूप में है। हमारे यहाँ नागमुखी बाणों का विवरण मिलता है, उनके चित्रादि भी धनुर्वेदादि ग्रन्थों में मिलते हैं। महाभारत में अनेक प्रकार के मुखधारी बाणों का वर्णन मिलता है और उसका विश्लेषण-विवरण 'भारतभाव-दीपिका' में भी

नागदेवी

लिखा गया है। नागपाश के लिए भी नागमुखी बाण के सन्धान के प्रसंग मिल जाते हैं।

ग्रीक के एक मिथक में देवी के द्वारा सर्प से लिपट कर सृष्टि की रचना करने की बात आई है। यह नारी की उस उर्वरा शक्ति का प्रसंग लगता है जो जीवन की संगति-विसंगतियों में सर्पाकार, वक्रवीथियों में भी अपने लक्ष्य को पूरा करती है। एक मिथक किस तरह परंपरा बनकर हमारी आस्थाओं की पगडंडियों को आधार दे रहा है, विचारणीय है।

नागों की पूजा के मूल में विष, धन, भूमिविहारी होने जैसे कारण दिखाई देते हैं। इसी कारण विहारी, भूमिया, मातोली, भौमिया, खेतला, खत्तीय आदि नाम और स्वरूप निर्धारित हुए लगते हैं। गदित और अनगड़ दोनों ही रूपों में नागराज की मूर्तिया मिलती है। चाँदी की पुतलियों के रूप में भी नाग बनाए जाते रहे हैं। मेवाड़ और मालवा में नाग-पूजा से जुडी जो मान्यताएँ हैं, उनको उनके उक्त वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखा और जाना जा सकता है। यहाँ गाताङजी, वलीचिया, भँवरासिया, उमडिया, नागदिया, बाँबियाँ, ओटाजी, राडाजी, ताखाजी आदि अनेक नामों से नागपूजा होती है। नागों के भोपा बड़ी संख्या में गाँव-गाँव मिलते हैं। गाँव-गाँव नागों के देवरे या लघुदेवालय मिलते हैं। हर सप्ताह नागों के देवरों में पूजा होती है। नीम की पत्तियों और यथासुलभ अफीम के पत्तों से नाग-प्रतिमाओं का सिंगार होता है।

'भोपा' भावाविष्ट रूप में लोगों को अभयदान देते हैं। शंख, झालर. नगाडा आदि का वादन किया जाता है। सच-झूठ के परीक्षण के रूप में साँप की बाँबी में व्यक्तियों के केसर लेपित हाथ डलवाये जाते हैं। बिना काटे हाथ के बाहर आने पर सत्य सिद्ध होने की बात स्मृति-शास्त्रों की दिव्य-परीक्षा की पृष्ठभूमि का परिचायक लगती हैं। यहाँ अहोई अष्टमी मनाई जाती है जो सर्पपूजा का प्राचीन पर्व है। नागपञ्चमी पर सूण बनाकर पूजे जाते हैं। गौडादि ब्राह्मणों में भी यह परम्परा है।

***

# 'नरपतिजयचर्या' की एक पाण्डुलिपि में नागचक्रों का अंकन

भवनाथ झा द्वारा संकलित

नाग के शरीर में चक्र तथा कुण्डली बनाने की प्रवृत्ति के कारण ज्योतिष-शास्त्र में भी अनेक प्रकार के नाग-चक्रों का वर्णन आया है। 'नरपतिजयचर्या' में दुर्भिक्ष-सुभिक्ष, यात्रा तथा खेत में बीज बोने के लिए शुभ मुहूर्त की गणना हेतु ऐसे अनेक चक्रों का वर्णन आया है। यहाँ हम 'नरपतिजयचर्या' से उन चक्रों का संकलन प्रस्तुत कर रहे हैं, जो ज्योतिष शास्त्र में अग्रतर शोध हेतु उपयोगी होंगे।

सभी चित्र एक प्राचीन पाण्डुलिपि से संकलित हैं। नरपति कृत 'नरपतिजयजर्या' नामक ग्रन्थ की यह पाण्डुलिपि सम्प्रति पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में संरक्षित है। इसकी संख्या 1468, आलमारी संख्या 12 तथा सेल्फ संख्या 1 है। इसे ई-गंगोत्री नामक संस्था के द्वारा archive.org पर साहित्यिक उपयोग के लिए Sarap Gudha Swaran Mani Matra Swar And Other Kundli Chakras And Tantrik SKetches Narpati Jai Acharya Sarodh के नाम से सार्वजनिक किया गया है। यहाँ संकलित सभी चित्र इसी पाण्डुलिपि के अंश हैं।

कालानलपरीक्षाचक्र

कालानलपरीक्षाचक्र 02

बीजोप्तिफणिचक्र

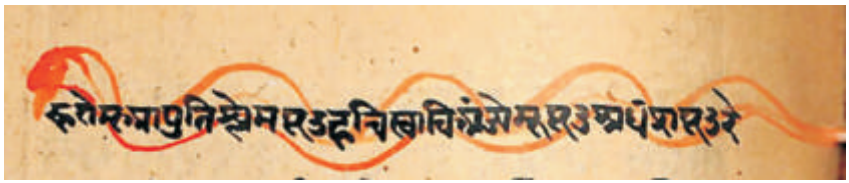

फणिचक्र

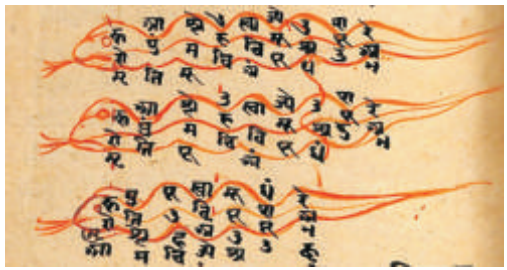

राहुचक्र

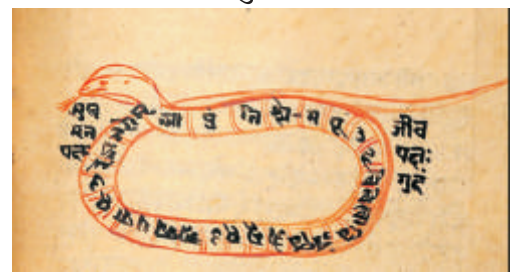


पथिचक्र

सूर्यफणिचक्र

रौद्रनाडीचक्र

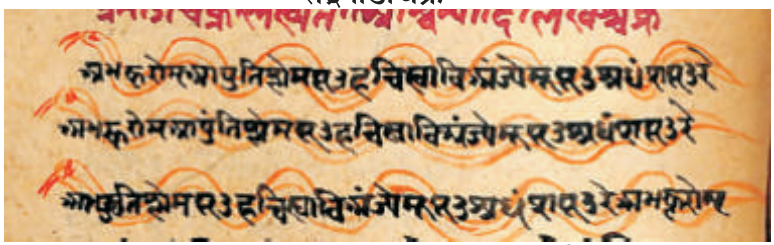

नाडीचक्र

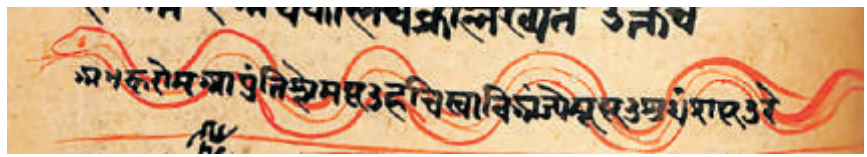

चन्द्रफणिचक्र

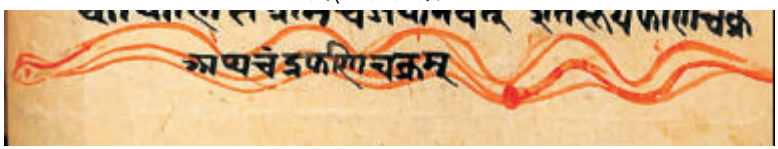

# बारह महीनों में विशेष है श्रावण मास

श्री जगन्नाथ करंजे

श्रावण मास में शिव की पूजा करने से प्राय: सभी देवताओं की पूजा का फल मिल जाता है। इस मास में काल के देवता भगवान् शिव की पूजा करना, कथा सुनना तथा शैवागमों का श्रवण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुत्सित विचारों का त्याग कर स्वभाव में नम्रता रखते हुए धैर्य एवं निष्ठा के साथ शिव-कथा का श्रवण करना चाहिए। शैवाचार्यों की सेवा में विश्वास रखते हुए और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तपस्वी की तरह व्रत में लीन रहना चाहिए। इस मास का माहात्म्य सुनने मात्र से ही मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसलिए इसे श्रावण मास कहा जाता है। पौर्णमासी को श्रवणा नक्षत्र का योग होने के कारण भी यह मास श्रावण कहलाता है।

इस मास की संपूर्ण कला को केवल ब्रह्माजी ही जानते हैं। इस मास के कुल तीस दिन व्रत व पुण्य कार्यों के लिए ही होते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस मास की सारी तिथियाँ व्रत अथवा पुण्य कार्यों के लिए ही होती हैं। विशेष रूप से महिलाओं के लिए जप, पूजा आदि के लिए यह मास सर्वश्रेष्ठ है। इस मास में शिवलिंग पूजा विशेष रूप से की जाती है।

**जातिवर्णादिनिषेध:**

**ये सन्ति जातिभेदास्थानेकवच्छिवयोगिन:।**
**पश्येदखिलजातिस्थानेकमातृसहोदरान् ॥40॥**
**न स्त्रीभेदो न पुंभेदो जातिवर्णाश्रमादिकम्॥**
**सर्वातीतमिदं विद्धि महाशैवमतं मम॥41॥**

(पारमेश्वर आगम, पटल 5)

जो नाना प्रकार के जातिभेद है, वे सब शिवयोगियों के लिए एक ही है। अत: शिवलिंग उपासक शिवभक्त समस्त जातियों में उत्पन्न प्राणियों को एक माता से उत्पन्न सहोदर भ्राता मानें। शैव-मत

* *लिङ्गायत शैव सम्प्रदाय के विशेष अध्येता, बीदर, कर्नाटक, 585401*

में स्त्री अथवा पुरुष का भेद नहीं है। जाति-वर्ण का भेद नहीं है। मेरा यह शैव-मत तो इन सब भेदों से ऊपर उठ गया है; अर्थात् सभी प्रकार के भेददृष्टियों को यह दूर कर देता है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र स्त्री सभी को शिवलिंग पूजा अधिकार दिये हैं।

'शिव' ये दो अक्षरों वाला नाम जिन मनुष्यों की जीभ ने एक बार भी लिया है, वह उनके समस्त पापों का नाश कर देता है।

**शिवेति द्व्यक्षरं यस्य नृणां नाम गिरेरितम्।**
**सकृत्प्रसङ्गात्सकलमघमाशु निहन्ति तत्।।46।।**

(श्रीशिव-महापुराण, सतीखण्ड, अध्याय 29)

शैवमत और शैवागम शास्त्र में स्त्री-पुरुष को शिव आराधना में समान अधिकार दिया गया है।

महिलाओं को श्रीशिव की पूजा बहुत शीघ्र फलवती हो जाती है। महानन्दा, चंचुला, पिंगला, शारदा, ऋषिका, आहुका आदि अनेक महिलाओं ने शिवभक्ति के प्रभाव से सद्गति प्राप्त की। कन्या में आत्मबल की वृद्धि हेतु शिवलिंग में प्रभु शिव की पूजा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

आजकल कुछ कपटी लोगों ने एक भ्रामक प्रचार फैला रखा है कि स्त्रियों को शिवलिंग के स्पर्श एवं पूजन का अधिकार नहीं है। रुद्राक्ष और भस्म त्रिपुण्ड्र लगाने का अधिकार नहीं है। विष्णु-भक्तों को रुद्राक्ष नहीं पहनना चाहिए, भस्म-त्रिपुण्ड्र नहीं लगाना चाहिए, शिवलिंग का पूजन नहीं करना चाहिए, शिवजी का प्रसाद नहीं खाना चाहिए इत्यादि। किन्तु ध्यातव्य है कि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती, जिसके दर्शन आज भी आकाशमण्डल के सप्तर्षि मण्डल में होते हैं, वह पूर्व जन्म में ब्रह्मा की पुत्री सन्ध्या थी। सन्ध्या ने गुरु वसिष्ठ से **ॐ नमः शङ्कराय ॐ** मन्त्र की दीक्षा लेकर चार युगों तक हिमालय की चन्द्रभागा नदी के तट पर प्रभु शिव के लिए तपस्या की थी।

ऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया ने, अपने पति अत्रि के साथ प्रभु शिव की पूजा करके ब्रह्मा-विष्णु-महेश के अंश से एक-एक पुत्र दुर्वासा, दत्तात्रेय और चन्द्रमा उत्पन्न किये। चंचुला ब्राह्मणी भ्रष्ट हो गई थी। उसने देहधारी गुरु से दीक्षा लेकर शिवोपासना से सद्गति प्राप्त की। सूर्यवंशी राजा दशरथ की पत्नियाँ कौशल्या,सुमित्रा एवं कैकेयी ने शिव-पूजन से ही श्रीविष्णु के अंश से चार पुत्र राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न प्राप्त किए। भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न सुधर्मा ब्राह्मण की पुत्री घुश्मा ने शिवलिंग का पूजनकर बिना तपस्या के ही प्रभु शिव का साक्षात्कार कर लिया और उसके नाम से द्वादश ज्योतिर्लिंगों में प्रसिद्ध घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग (एलोरा गुफा के समीप) विराजमान है।

शिवलिंग के माहात्म्य का वर्णन करते हुए शास्त्रों में कहा गया है कि जो मनुष्य किसी तीर्थ की मृत्तिका से शिवलिंग बनाकर उनका विधि-विधान के साथ पूजा करता है, वह शिवस्वरूप हो जाता है। शिवलिंग का सविधि पूजन करने से मनुष्य सन्तान, धन, धन्य, विद्या, ज्ञान, सद्बुद्धि, दीर्घायु और मोक्ष की प्राप्ति करता है।

जिस स्थान पर शिवलिंग की पूजा होती है, वह तीर्थ न होने पर भी तीर्थ बन जाता है। जिस स्थान पर सर्वदा शिवलिंग का पूजन होता है, उस स्थान पर मृत्यु होने पर मनुष्य शिवलोक जाता है। 'शिव' शब्द के उच्चारण मात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और उसका बाह्य और अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। दो अक्षरों का मन्त्र 'शिव' परब्रह्मस्वरूप एवं तारक है। इससे अलग दूसरा कोई तारक ब्रह्म

नहीं है।

**तारकं ब्रह्म परमं शिव इत्यक्षरद्वयम्।**
**नैतस्मादपरं किञ्चित् तारकं ब्रह्म सर्वथा॥**

जगदम्बा ने प्रभु शिव से प्रार्थना की- "हे नाथ! आपने बहुत समय तक मेरे साथ विहार किया, उससे मैं प्रसन्न हूँ और मेरा मन उस ओर से निवृत्त हो गया है।"

**देवदेव महादेव! करुणासागर! प्रभो।**
**दीनोद्धर! महायोगिन् कृपां कुरु ममोपरि॥४॥**

हे देवेश! हे हर! अब मैं उस परम तत्त्व को आपसे जानना चाहती हूँ, जिससे प्राणी शीघ्र ही संसार के दु:खों से पार हो जाये, जिसे करके विषयी जीव परम-पद को पाकर पुन: संसार में जन्म न ले सके। कृपा करके उस तत्त्व का आप वर्णन कीजिए। (श्रीशिव-महापुराण, सतीखण्ड, अध्याय २३, श्लोक ४-९) तब प्रभु शिव ने अपना गुप्तज्ञान (शिव की नवधा भक्ति) सती जगदम्बा को दिया :-

"भुक्ति-मुक्ति रूप फल को देनेवाली मेरी भक्ति ब्रह्म-ज्ञान की माता है....भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है..... मेरी भक्ति ज्ञान एवं वैराग्य उत्पन्न करती है, मुक्ति भी इसकी दासी बनी रहती है।" (श्रीशिव-महापुराण अध्याय श्लोक १२-४६ पृष्ठ संख्या १९२-१९३

## शिव, श्रावण और कृषि

कृषि के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी वस्तु है जल। जल के बगैर कृषि कर पाना शायद असम्भव है। शिवजी ने जल को अपनी जटा में बाँधकर रखा है, कृषि कार्य के लिए। आधुनिक काल में कृषि को पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध कराने के लिए बहुत सारे संसाधन खोज लिए गये। किन्तु प्राचीन काल में जल के लिए वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता था। धरती को जितना अधिक जल मिलेगा उतनी ही अच्छी वर्षा होगी। वर्षा के चार माह होते हैं, जिनमें सबसे अधिक उपयोगी श्रावण मास को माना जाता है, क्योंकि सावन माह में धान की रोपाई अपने चरम पर होती है। सावन, शिव और समृद्धि इनका आपस में बहुत गहरा संबंध है। सावन के महीने में शिवजी को प्रसन्न करने से वर्षा अच्छी होगी, जिससे हमारी कृषि का उत्पादन बढ़ेगा और आर्थिक समृद्धि आयेगी।

नन्दी भगवानजी का सबसे प्रिय गण एवं जीवोत्तम है। भारत का कल्याण दुनिया का कल्याण है। शिव की सवारी नन्दी-वृषभ- बैल है। भारत कृषि प्रधान देश है और कृषि बैलों पर आधारित है, इसलिए शिव का नन्दी भी भारत का आधार है। कृषि संस्कृति में प्रकृति के रहस्य को लेकर तरह-तरह की कल्पनाओं की व्यंजना दिखाई देती है। लोक-जीवन ने प्रकृति में जिन चीजों में रहस्य की अनभूति की उसमें 'नम: शिवाय' ध्वनि की परिकल्पना कर ली। यह पंचाक्षरी कृषि-कर्म को पाशुपत-दर्शन के माध्यम से प्राप्त हुआ। पाशुपत दर्शन के आलोक में कृषि के विस्तार की लम्बी और सुदीर्घ परम्परा भारतीय दर्शन, भारतीय वाङ्मय और भारतीय भाषा में रही है। कण-कण में भगवान के विद्यमान रहने की भारतीय अवधारणा प्रकृति में ईश्वरवाद और देववाद के सांस्कृतिक मूल्यों के रूप में निरन्तर रुपान्तरित होती रही; क्योंकि लोक-संस्कृति में ईश्वर अथवा देव शब्द के गुण-गुणात्मक की अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के साथ निरन्तर गतिमान् द्वन्द्व दिखायी देता है। यही गतिमान् द्वन्द्व कृषि संस्कृति के जीवन-मूल्यों का भी द्वन्द्व बन

(शेष पृ. 25 पर)

# विषहरापूजा

पं० शशिनाथ झा

**सर्वकामाप्तसंसिद्धां सर्वकामप्रपूरिकाम्।**
**विषतापापहन्त्रीं च नुमो विषहरीं पराम्॥**

सिद्धिदायिनी संकष्ट हारिणी विषशमनप्रभावा भगवती विषहरा की पूजा पूरे देश में होती है। इसी देवी का दूसरा नाम मनसा भी है। यह नागकुल में उत्पन्न हुई थी। इनकी पूजा के साथ नागों की भी पूजा होती है।

**उत्पत्ति और व्युत्पत्ति**

'श्रीमद्देवीभागवत' (स्कन्ध-9, अध्याय 47 एवं 48), 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' प्रकृतिखण्ड अ० 45 'कालिकापुराण' आदि ग्रन्थों में मनसा का उपाख्यान है। तदनुसार सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा से मरीचि एवं मरीचि से कश्यप मुनि उत्पन्न हुए। कश्यप ऋषि को कद्रु नामक स्त्री से अनन्त, तक्षक, कर्कोटक आदि नाग तथा वासुकि (शेष), कम्बल, कुलिक आदि सर्प उत्पन्न हुए। 'अमरकोष' में नागों का राजा अनन्त एवं साँपों का राजा वासुकि कहा गया है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी नाग एवं सर्प को भिन्न कहा गया है- "अनन्तश्चास्मि नागानां सर्पाणामस्मि वासुकिः" (10.28)। टीकाकारों ने स्पष्ट किया है कि नाग देवयोनि होने से स्वेच्छा रूप बना लेते थे, सामान्य रूप से उनके पूँछ और मस्तक साँप के और देह मनुष्य के होते थे। जब कि साँप पूरा और हमेंशा साँप ही रहता था। परन्तु शास्त्रों, काव्यों एवं व्यवहार में नाग एवं साँप को एक ही माना जाता है। उत्पत्ति भी दोनों के समान हैं। अतः सर्पराज वासुकि, कुलिक आदि को भी नाग कहा जाता है। अष्टनाग में सर्प भी आते हैं। लोकव्यवहार में महाविषधर को ही नाग कहा जाता है। इसीलिए गोनस (ढोंढ़), डुण्डुभ (गनगोआरि, दुमुँहाँ साँप), हरहरा आदि को नाग न कहकर साँप ही कहते हैं। सारांश यह हुआ कि नागपूजा और सर्पपूजा एक ही है।

'नगे=पर्वते चन्दनादितरौ भवाः नागाः' - नग=पर्वत पर उत्पन्न होने से नाग हुए। अथवा, न गच्छति अगः =अचल, जो अचल न हो वह नाग।

साँपों/नागों में विष होता है। ये क्रोधी होते हैं। अतः मनुष्यों को डँस लेते हैं और वह व्यक्ति मर जाता है। हलाँकि सर्प हवा पीते हुए वायुमण्डल में व्याप्त विषों को पीकर संसार का उपकार भी करते हैं। कद्रु से उत्पन्न सर्पों से पृथ्वी व्याप्त हो गयी। उनके दंश से बहुत मनुष्य और पशु मरने लगे। तब कश्यप प्रजापति ने अपने मन से संसार रक्षा के लिए एक कन्या को उत्पन्न किया-

**तपसा तेजसा च त्वां मनसा ससृजे पिता।**
**अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा॥**

* *पूर्व प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर व्याकरणविभाग, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार) 846008, चल दूरभाष- 9199475909*

कश्यप ने अपनी तपस्या और तेज से मन के द्वारा ही एक कन्या को उत्पन्न किया जिससे संसार की रक्षा हो। मन से उत्पन्न होने के कारण उस कन्या का नाम 'मनसा' पड़ा- मनस्+अच् (अर्श आदित्वात्)+ स्त्रीलिंग में टाप् (आ)= मनसा। दूसरी व्युत्पत्ति (रचना, बनावट) है- 'मन से जिसकी स्तुति की जाय या मन में भक्ति एवं पूजा जिसकी की जाय वह मनसा हुई।' वह कन्या भी नागस्वरूपा होने से 'नागेश्वरी' कही जाने लगी। 'नाग' शब्द से स्त्रीलिंग में हाथी अर्थ रहने पर 'नागी' और सर्प अर्थ होने पर 'नागा' होता है। मनसा देवी नागा हुई और अनन्त, वासुकि आदि इनके भाई हुए।

मनसा ने शिव की आराधना से उनकी शिष्या होकर तपस्या से सिद्धि प्राप्त की और अपने प्रभाव से ही बिना किसी को कष्ट पहुँचाये सर्पविष का हरण करने लगी और संसार में सर्पभय दूर हुआ। इसलिये ये विषहरा (विष को बिना प्रयास ही दूर करने वाली) कहलाने लगी। 'विषं हरति' इस अर्थ में 'हरतेरनुद्यमनेऽच्' इस पाणिनि के सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ। यद्यपि विषहरी' यह प्रयोग भी मिलता है जो 'बह्वादिभ्यश्च' इस पाणिनि के सूत्र के वैकल्पिक ङीष् प्रत्यय से बनता है और मिथिला के लोकगीतों में- 'बिसहरि' के रूप में पाया जाता है, तथापि प्रचलित नाम 'विषहरा' ही है। वैसे 'देवीभागवत' में दोनों प्रयोग है-

**जरत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरेति च।**

- 9.47.54

**विषं संहर्तुमीशा या तस्माद् विषहरी स्मृता**

9.47.47

विषहरा के नामों में कश्यपपुत्री, अनन्तभागिनी, जरत्कारुपत्नी, वासुकिभगिनी, शिवशिष्या प्रसिद्ध हैं। इनके बारह नामों के उच्चारण से ये प्रसन्न होतीं हैं- जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभागिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी और महाज्ञानयुता।

विषहरा तपस्या करती करती जरा (बूढ़ी) हो गयी किन्तु कर्मठ एवं कलाकुशल बनी रही। इन्होंने श्रीकृष्ण की आराधना की। भगवान् ने इनका नाम जरत्कारु (बूढ़ी कलानिपुणा) कर दिया और नवीन बना दिया। उसी समय एक मुनि अपने पितरों के उद्धार के लिए सन्तान की कामना से विवाह हेतु कन्या के अन्वेषण में भटक रहे थे। उनका नाम जरत्कारु था। उनकी प्रतिज्ञा थी कि समान नाम की लड़की से ही विवाह करूँगा। वहाँ पहुँचने पर ऋषियों ने इन दोनों का विवाह करा दिया। उन्हें एक पुत्र हुआ आस्तीक जिसने जनमेजय के सर्पसत्र में सर्पो की रक्षा की। नाग के अवतार के रूप में अनेक महापुरुष के आम आते हैं- राम के अनुज लक्ष्मण, छन्दःसूत्रकार पिंगल, महाभाष्यकार पतंजलि आदि।

## सर्पपूजा की प्राचीनता

सर्पपूजा वेद से ही प्रचलित है। जहाँ 'यजुर्वेद' में सर्प की स्तुति है, वहीं अथर्ववेद में विषचिकित्सा वर्णित है। वैदिक ऋषि सर्प का नमस्कार करते हैं-

**नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।**
**ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥**

शुक्लयजुर्वेद, माध्यन्दिनसंहिता-13.6

अर्थात् मै उन सभी साँपों को नमस्कार करता हूँ जो पृथ्वी पर, आकाश में और स्वर्ग में हैं।

तन्त्रशास्त्र में सर्पों की पूजा एवं सर्पदंश के निवारण का उपाय वर्णित है। मन्त्र, औषध एवं प्रयोग के द्वारा सर्पविष का निवारण कहा गया है। विशेषतः

## मनसादेवी का स्तोत्र

**अथ मनसा स्तोत्रम्॥**
**नमो विषहरायै॥ ह्रीं श्रीं मनसा देव्यै स्वाहा॥**
**नमः सिद्धिस्वरूपायै, सिद्धिदायै नमो नमः।**
**नमः कश्यपकन्यायै वरदायै नमो नमः॥**
**नमः शङ्करकन्यायै शङ्करायै नमो नमः।**
**नमस्ते नागवाहिन्यै नागेश्वर्यै नमो नमः॥**
**नमो नागभगिन्यै च योगिन्यै च नमो नमः।**
**नम आस्तीकमात्रे च जनन्यै जगतां नमः॥**
**नमो जरत्कारुनाम्ने जरत्कारुस्त्रियै नमः।**
**नमश्चिरं तपस्विन्यै सुखदायै नमो नमः॥**
**नमस्तपःस्वरूपायै फलदायै नमो नमः।**
**सुशीलायै च सध्व्यै च शान्तायै ते नमो नमः॥**
**इति कालिकापुराणे विषहरास्तोत्रं समाप्तम्॥**

शाबरमन्त्र के द्वारा विष झाड़ने की परम्परा युगों से चली आ रही है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में नागपूजा, मनसापूजा एवं विषनिवारण के उपाय वर्णित हैं।

**पूजा का निर्धारित दिन–**

वैसे तो विषहरा की नित्य पूजा होती है, कुलदेवी के साथ इसकी भी पूजा होती है, किन्तु विशेष अवसर पर विषहरा एवं नागों की पूजा का विशेष विधान है–

(1) मिथुन संक्रान्ति दिन (आषाढ़ मास) में मनसा की पूजा होती है–

**ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः।**
**पञ्चम्यां मनसाख्यायामीशां त्वां च दिने दिने॥**
**पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि च।**
**यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः॥**

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, प्रकृतिखण्ड–46

अर्थात् हे मनसा देवी! जो व्यक्ति आषाढ़ मास की संक्रान्ति के दिन भक्तिपूर्वक आपकी पूजा करते हैं और तब से प्रतिदिन 'मनसापञ्चमी' में पूजते हैं उनके पुत्र, पौत्र आदि और धन बढ़ते हैं तथा वे यशस्वी (गुण से ख्यात), कीर्तिमान् (तालाब, बगीचा, मन्दिर आदि बनाने से विख्यात), विद्यवान् और गुणी होते हैं।

यहाँ श्रावणकृष्ण पंचमी का नाम 'मनसा पंचमी' कहा गया है, जिसे व्यवहार में मनसा > मना > मेना > मौना पंचमी कहते हैं। वस्तुतः यह मनसा देवी की पूजा की पंचमी है। इसमें मनसा देवी की विशेषपूजा, विशेष भोग आदि होनी चाहिए–

**बीजमन्त्र – ह्रीं श्रीं मनसा देव्यै स्वाहा।**

**प्रणाम मन्त्र –**

**आस्तीकस्य मुनेर्माता**
**भगिनी वासुकेस्तथा।**
**जरत्कारुमुनेः पत्नी**
**मनसादेवि! ते नमः॥**

– मनसापूजापद्धति

(2) मनसापंचमी (मौना पंचमी) इस दिन मनसा एवं नागों की पूजा की जाती है। यह पूजा मनसा (मन ही मन, जोर से उच्चारण न कर) पूर्वोक्त वचन के अनुसार इस दिन से आरम्भ कर अगली पंचमी तक 'दिन–दिने'= प्रतिदिन पूजा का विधान है। मिथिला में मधुश्रावणी की पूजा इसी पंचमी से प्रारम्भ होकर अगली तृतीया तक चलती है। नवविवाहिता कन्या द्वारा नाग–विषहरा–गौरी आदि की पूजा की जाती है। इस दिन मनसा देवी निद्रा से जागती है।

नागपूजा में षष्ठीयुक्ता पंचमी ग्राह्य है, चतुर्थीयुता नहीं–

**पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता।**
**तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका॥**

कृत्यसारसमुच्चय

इस पंचमी में मनसादेवी विषहरा की पूजा स्नुहीवृक्ष (धाञि, पसीझ, गूदेदार काँटेदार झाड़ी) पर करें एवं उन्हें गाय के दूध एवं शीतल जल से स्नान करावें, जैसा कि म.म.वाचस्पति मिश्रकृत 'कृत्यमहार्णव' में लिखा है–

**सुप्ते जनार्दने कृष्णपञ्चम्यां भवनाङ्गणे।**
**पूजयेन्मनसादेवीं स्नुहीविटपसंस्थिताम्॥**
**करवीरैः शातपत्रैः जातीपुष्पैः सचन्दनैः।**
**स्नापयेद् गव्यपयसा तथा शीतोदकेन च॥**

अर्थात् जनार्दन (विष्णु) के सो जाने पर (हरिशयनी एकादशी के बाद) कृष्णपंचमी को अपने घर के प्रांगण (परिसर) में स्नुही पेड़ पर मनसादेवी की पूजा करवीर, कमल और मालती फूलों में चन्दन लगाकर करें। विषहरा की पीड़ी (मिट्टी के गोलाकार पिण्ड) पर दूध चढ़ाने की परम्परा चल रही है।

**ध्यान–**

**श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्।**
**वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम्॥**
**महाज्ञानयुतां चैव प्रवरां ज्ञानिनां सतीम्।**
**सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे॥**

– ब्रह्मवैवर्तपुराण

अर्थात् उजली चम्पा के रंग की चमक वाली, रत्न युक्त आभूषणों से शोभित, अग्निशुद्ध वस्त्र पहनी हुई, नाग को जनेऊ के रूप में धारण करती हुई, महान् ज्ञान से युक्त, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, सिद्ध को स्थापित करनेवाली, स्वयं सिद्ध एवं सिद्ध देनवाली मनसादेवी का हम भजन करते हैं।

**स्नुही** नामक पौधा यूफोर्बिसी कुल का यूफोर्बिया नेरीफोलिया लिन नामक पौधा है। इसे हिन्दी में **थुहरा**, अंगरेजी में Common milk hage बंगला में **मनसा सिज**, मैथिली में **पसिज** तथा अरबी में **जैकुम** कहते हैं।

**विशेष कृत्य**

श्रावणकृष्ण पंचमी को पूजा से पहले ही पूजागृह के द्वार के दोनो ओर गोबर से साँप की आकृति बना लें। उस पर दही और दूब लगा दें। उस आकृति पर दक्षिण (दायीं) भित्ति (दिवाल) पर आठ नागों की पूजा करें– वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय। उत्तर भित्ति पर वासभूमिपति नाग की पूजा करें। दक्षिणभित्ति के नीचे भूमि पर मान (मैना) के पत्ते पर सिन्दूर पिठार से अरिपन देकर उसपर अनन्त (शेषनाग) और विषहारा की पूजा करें। नैवेद्य में मीठा खीर, खट्टे

दही मिला नमकीन खीर, नींबू, नीम के पत्ते, आम की सूखी गुठली, विविध फल, दूध में मिला धान का लाबा इत्यादि देना चाहिए।

इस पंचमी में सभी लोग पूजा करते हैं, पर मिथिला के मांडर (मड़रए) कुल के ब्राह्मण एवं उनके कुछ अनुयायी अन्य जाति के लोग इस पंचमी में नागपूजा न कर श्रावण शुक्ल पंचमी को इसी प्रकार पूजा करते हैं। जो कृष्ण पंचमी में पूजा करते हैं, वे शुक्ल पंचमी में नहीं करते हैं।

## विषहरा का गीत

**केओ नीपै आसन-वासन, केओ चौपाड़ि हे।**
**हमहूँ नीपी सेवक माता बिसहरि दुआरिहे।**
**कथी केर आसन-वासन, कथी के चौपाड़ि हे।**
**कथीये ओङठि माता, खेलै जूआ-सारि हे॥**
**जूआ खेलइते माता गेली अलसाय हे।**
**सुतली माता बिसहरि पलङा ओछाय हे॥**
**बिसहरि सेवि मोरा किछु नहि भेल हे।**
**गोढ़े नीचे विसहरि माता नीन पड़ि गेल हे॥**
**सेहो सुनि माता विसहरि उठली चेहाए हे।**
**हमहूँ जाएब सेवक तोहरो दुआरि हे॥**
**जैसे रे नचैत आबै वन के मयूर हे।**
**तैसे रे नचैत आएलि पाँचो बहीन हे॥**
**बिसहरि सेवि मोरा सब किछुभेल हे।**
**सिरक सिन्दूर भरि जीवन रहि गेल हे॥**

दिन में महिलावर्ग नाग के लिये धान को भूँज कर लाबा तैयार करती हैं और मूस की खोदी मिट्टी लेकर रखतीं हैं। चिकनी मिट्टी को पानी से गीला कर पांच पिण्ड या जितने घर हों उतने पिण्ड बनाकर दूब सिन्दूर पिठार से पूजन कर आंगन में रखते हैं। सायंकाल कोई प्रतिष्ठित पुरुष खड़ाऊँ पेन्टकर मूषक-मिट्टी मिले लाबा को सर्पमन्त्र (शाबर तान्त्रिक जौड़ी) से अभिमन्त्रित करते हैं।

**मन्त्र**

(क) **दू सप्पा चौ सप्पा, झाड़े सारे कारे विषा,**
**आस्तीक आस्तीक आस्तीक।**

**(ख) गरुड़-गरुड़ विष झम्पय,**
**थहर-थहर विष कम्पय।**
**विषझाड़ै विष मारै,**
**विषा करै अहार, जो रे विषा सात समुद्दर पार। विस्मम्भरा हरो हर हर॥**

इस लाबा को सभी घरों में छीटते हैं जिससे सर्पभय नहीं होता है और पूजित मिट्टी के पिण्ड को एक एक कर प्रत्येक घर में रख देते हैं, जो वर्ष भर सर्पविष झाड़ने में काम आता है।

**(3) नागपंचमी**– यह श्रावण शुक्ल पंचमी (षष्ठी युता) में आयोजित होती हे। पूर्वोक्त विधि ही इसमें होती है। इसमें मिथिला में केवल माण्डर ब्राह्मण एवं कुछ उनसे प्रभावित लोग ही पूजा करते हैं।

**(4) मनसादेवी शयन**– अगहन कृष्ण पंचमी (षष्ठीयुता) में मनसादेवी शयन करती हैं। वे श्रावणकृष्ण पंचमी को जागती हैं और तब से

चातुर्मास्या (सावन, भादव, आश्विन और कार्तिक) में जागती ही हैं। फिर आठ महीना अगहन से आषाढ़ तक सोती रहती हैं। अतः इस पंचमी में भी अनन्त, अष्टनाग और विषहरा की पूजा होती है।

इस चातुर्मास्या में सर्पभय से मुक्त रहने के लिए आषाढ़ में आर्द्रानक्षत्र के प्रथम चरण में कुलदेवी को पायस देकर प्रसाद रूप में उसे खाते हैं और शुक्लपक्ष के रविवार को पुलिकमूल (सर्पगन्धा, इसरगत) कलाई पर बान्धते हैं।

पुलिकमूल की जड़ी

**मन्त्र- शुचि सित दिनकरवारे**
**करमूले बद्ध पुलिकमूलस्य।**
**नागारेरिव नागाः**
**प्रयान्ति किल दूरतस्तस्य॥**

-कृत्यसारसमुच्चय।

पुलिक, सर्पगन्धा, इसरगत का पौधा

(5) **वास्तुपूजा में**- गृहनिर्माण से पूर्व एवं गृह में प्रथम प्रवेश के समय वास्तुपुरुष की पूजा के साथ वास के अधिपति नाग की पूजा होती है। यज्ञ के आरम्भ से पहले यज्ञ स्थल पर वास्तुपूजा आवश्यक है।

(6) **कूप तालाब खुदवाने में**- तडागयाग से पहले वास्तुपूजा होती है जिसमें चान्दी से नाग बनाकर उसकी पूजा होती है।

**लोकप्रचलित कथा-**

एक बूढ़ी महिला नदी में स्नान कर रही थी। उसी समय उसने वहाँ कमल के पत्ते पर पाँच साँपों को खेलते देखा। वहाँ से आवाज आने लगी- सुनो, बूढी माता! आज मौना पंचमी है। आप घर जाकर पूरे गाँव में सूचना दे दें कि विषहरा एवं नागों की पूजा करें। घर आङन लीपें, द्वार पर गोबर का नाग बनाएँ, मान के पत्ते पर पूजा करें और खीर, दही का नमकीन खीर, नीम के पत्ते, नीम्बू आदि प्रसाद चढ़ाकर उसे सभी ग्रहण करें। इससे सभी का कल्याण होगा।

उस वृद्धा के कहने से गाँव के लोगों ने श्रद्धा से वैसा ही किया, परन्तु कुछ लोगों ने इस पर विश्वास कर पूजा नहीं की। रात में सोने पर सुबह में वे उठे नहीं, वे सब तो मर चुके थे। पूरा गाँव हल्ला मच गया। तब उसी वृद्धा ने नदी किनारे जाकर उन खेलते हुए साँपों से मृत व्यक्तियों के जीने का उपाय पूछा। वे सर्प पाँचों बहन बिसहरा थीं। उन्होंने कहा कि जो प्रसाद बँचा हो, उसमें पानी मिलाकर उन मरे हुए लोगों के मुँह में डालने से वे जी जायेंगे। अब वे प्रतिवर्ष सावन शुक्लपंचमी को नागपूजा करेंगे तो कल्याण होगा।

ऐसा करने से वे जी गये और अगली पंचमी में भक्तिपूर्वक पूजा करने से सुखी रहने लगे।

## विषहरा मन्दिर

प्राय: प्रत्येक गाँव में विषहरा गहबर (गुफा की तरह पूजाघर) है, जहाँ भगत (सेवक) पूजा करते हैं और लोगों के दु:ख का निवारण करते हैं। बहुत स्थानों पर मनसामन्दिर, विषहरा मन्दिर, नगमन्दिर आदि विद्यमान हैं। हरिद्वार का मनसा मन्दिर, दरभंगा का नागमन्दिर, नवटोल (झंझारपुर) का विसहरा मन्दिर आदि दर्शनीय स्थान हैं जहाँ असंख्य श्रद्धालु दर्शन-पूजन से सफल मनोरथ होते हैं।

नवटोल (झंझारपुर) में बहुत प्राचीनकाल का गहवर है। इधर सौ वर्ष से उस स्थान का विकास हुआ है। अब भव्य मन्दिर है। उसी गाँव के सिद्धपुरुष भगतजी (पं. दु:खहरण मिश्र) विषहरा के फूल-विभूति से असाध्य रोगियों को स्वस्थ करते थे। आज से चालीस वर्ष पूर्व मैं एक मित्र को लेकर वहाँ गया था जो वातव्याधि से पूरे शिथिल हो गये थे, चिकित्सकों से निराश थे। भगतजी के फूल-भस्म-प्रसाद के सेवन से वे केवल पन्द्रह दिन में ठीक हो गये थे। अभी उस स्थान में भगतजी के पुत्र श्री बौआजी (श्रीवैद्यनाथ मिश्र) माता बिषहरा की सेवा में समर्पित हैं। प्रतिदिन भक्तों की भीड़ रहती है और माता विषहरा की आराधना से लोगों का कल्याण हो रहा है।

***

# मगध की संस्कृति में नागपंचमी

श्री उदय शंकर शर्मा

**सनातन धर्म की विशेषता है कि हम वस्तुतः जीव-जन्तुओं में भी ईश्वर का रूप देख लेते हैं। सर्प भगवान् शिव का आभूषण है तो उसे भी देवता के रूप में पूजने की परम्परा विद्यमान है। यद्यपि हम सम्पूर्ण भारत में नाग-पूजा का विधान देखते हैं, किन्तु गंगा के दोनों तटवर्ती क्षेत्रों में यह विशिष्ट परम्परा के रूप में उभरकर सामने आती है। इन क्षेत्रों में बहुत सारे बिसहरा स्थान हैं, मनसा देवी तथा नागदेवी की मूर्तियाँ मिली हैं। मगध के सांस्कृतिक क्षेत्र में भी नाग-पूजा की पुष्ट परम्परा है, जिसे यहाँ उसी क्षेत्र के लोक-रचनाकार ने अपना शब्द दिया है।**

भारत के अन्य क्षेत्रों की भाँति मगही भाषी क्षेत्र (मगध या मगह) में भी नागपंचमी का त्योहार/श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाया जाता है। यह एक पारम्परिक लोक त्योहार है, जो श्रावण माह में कृष्णपक्ष पंचमी एवं शुक्लपक्ष पंचमी के दिन मनाया जाता है। मगध क्षेत्र में इसे 'नकपाँचे', 'लकपाँचे' या 'नागपंचमी' कहा जाता है।

नागपंचमी में नागदेवता की पूजा होती है। ग्रीष्मकाल में विषैले साप ग्रीष्मनिद्रा में भूमिगत रहते हैं, जो वर्षा ऋतु में बाहर निकलकर शिकार की खोज में इधर-उधर घूमते रहते हैं। पूर्व काल में कच्चे मकानों, घास-पात के जंगलों में इनका उत्पात शुरू हो जाता होगा, फलस्वरूप असंख्य लोग सर्पदंश से अकाल मृत्यु का आलिंगन करते होंगे। चूँकि उस समय सर्पदंश से बचने की कोई वैज्ञानिक औषधियाँ नहीं थी, जिसके चलते लोगों ने अपनी सुरक्षा हेतु नागदेवता की पूजा की परिकल्पना कर ली होंगी, जो बाद के दिनों में लोक-त्योहार बन गया।

यूँ भी भगवान् आशुतोष के गले में सर्प और भगवान विष्णु के आसन (शैय्या) में नाग की कहानी मशहूर है। शास्त्रों में नाग देवता की स्तुतियाँ भी प्रचलित है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामचरितमानस में इनकी स्तुति की है।

मगध में नागपंचमी का त्योहार विभिन्न जिलों में भिन्न-भिन्न ढंग से मनाया जाता है। पश्चिमी नवादा, गया अरवल, औरगाबाद, जहानाबाद और पश्चिमी पटना में महिलाएँ मिट्टी या धातु की कटोरी में धान का लावा और दूध से नाग-देवता की आराधना करतीं हैं। कहीं-कहीं इसे एकान्त जगह में रखा जाता है; तो कहीं-कहीं शिव मन्दिर में या माँ विषहरी (जो कुछ जगहों पर पिण्डी के रूप में स्थापित होती है) के पिण्डी पर चढ़ाया करतीं हैं और नाग-देवता से अपने परिवार को सर्पदंश से निदान की मनौती करती है।

★ *पूर्व अध्यक्ष, बिहार मगही अकादमी।*

नालन्दा, पूर्वी नवादा, शेखपुरा, लखीसराय, पूर्वी पटना में नागपंचमी बड़े धूम-धाम से मनाने का प्रचलन है। सुबह-सुबह महिलाएँ अपने घर के चारों ओर की दीवार में गोबर से लकीर खींच देती है। संभवत: इसे विषधरों के लिए लक्ष्मण-रेखा के रूप में मानने की प्रथा है। पुरुष नीम की हरी डालियाँ लाकर अपने आवास में यत्र-तत्र टाँग देते हैं। नागदेवता की आराधना इन क्षेत्रों में भी उपर्युक्त विधि यानि लावा और दूध से की जाती है।

पूजा-अर्चना के उपरान्त इन क्षेत्रों में, घरों में विभिन्न प्रकार के व्यंजन तैयार किये जाते हैं, जिन्हें लोग स्वयं के साथ-साथ पड़ोसियों, कुटुम्बजनों एवं मित्रों के यहाँ भेजते हैं, जिन्हें 'बैना-पिहानी' कहा जाता है। इस रिवाज से सामाजिक सौहार्द और सद्भावना भी बनी रहती है।

कुछ जिलों में घर के सभी सदस्य नीम की पत्ती का रस या नीम की पत्ती और दही मिलाकर खाते हैं। यह सार्वजनिक रूप से अनिवार्य माना जाता है।

कुछ अन्य त्योहारों एवं पर्वो की भांति यह त्योहार भी कृषि कार्य से जुड़ा है। गाँवों में धान की रोपनी इसी नागपंचमी से प्रारम्भ होती है। इस दिन आम और कटहल का कोवा खाने की प्रथा है। लोग अपनी हस्ती के अनुसार उँचे-ऊँचे दाम में आम और कटहल खरीदते हैं। निकट ही नहीं, दूर-दराज के सम्बन्धी गण आम और कटहल अपने संबंधियों एवं मित्रों के घर पहुँचाते हैं।

कभी-कभी किसी परिवार में जब इसी दिन किसी की मृत्यु हो जाती है, तो उस परिवार में अगले वर्ष से आगे के वर्षो में भी नागपंचमी को शोक दिवस के रूप में तब तक मनाते हैं, जब उस घर में किसी बच्चे का जन्म इसी दिन नहीं हो जाता है। प्रथा तो ऐसी भी है कि यदि नागपंचमी के दिन उस घर में गाय भी बच्चा दे देती है, तो पुन: उस घर में पूर्व की भाँति नाग-पूजा शुरू हो जाती है।

इस प्रकार नागपंचमी का त्योहार विज्ञान (स्वास्थ्य, कृषि) अध्याय और समाजशास्त्र से जुड़ा पावन पर्व है, जो मगध क्षेत्र में धूम-धाम से मनाया जाता है।

पूर्वी मगही भाषी क्षेत्रों में, भागलपुर एवं जमुई के सम्पर्क के कारण, जहाँ बिहुला-विषहरी' लोक-गाथा घर-घर में लोकप्रिय है, इसके चलते कुछ जगहों पर गीत एवं भजन के साथ यह त्योहार मनाया जाता है। किन्तु व्यापक रूप में नहीं।

जहाँ तक नाग-देवता के 'प्रसिद्ध स्थान' की बात है, तो मेरे गाँव पोआरी में भी नागेश्वर स्थान के नाम से भूखण्ड सुरक्षित है, जहाँ सदियों से नागदेवता की पूजा होती रही है। वर्तमान में उन प्राचीन पिण्डियों को लोगों ने कंक्रीट में परिवर्तित कर दिया है।

लखीसराय के बड़हिया गाँव में स्थापित माँ त्रिपुरसुन्दरी (माँ महारानी) को भी विषहरण करनेवाली के रूप में देखा जाता है। कहा जाता है किसी भी व्यक्ति को यदि विषधर ने डँस लिया है तो उसे माँ के मंदिर परिसर के जलस्रोत (कुआँ) का जल 'श्रीधर' का नाम लेकर पिला देने से विष दूर हो जाता है। यहाँ के जल को 'नीर' कहा जाता है। यहाँ भी नागपंचमी के दिन विशेष ढंग से पूजा-अर्चना की जाती है।

बड़हिया में स्थापित माँ त्रिपुरसुन्दरी का मन्दिर

बख्तियारपुर (पटना) में भी राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय से सटे दक्षिण एन.एच. 31 के किनारे एक सुन्दर विषहरी माँ का मन्दिर है, जहाँ नागपूजा करने लोग आते हैं।

इस दिन, मगह के सँपेरे जो घुमक्कर प्रवृति के होते हैं एवं साँप पकड़ने में माहिर होते हैं, वीण बजाकर नागदेवता की पूजा करते हैं। वे भी दूध एवं लावे के साथ बतासा चढ़ाते हैं। पूजा के बाद ये घर-घर जागर इस दिन साँप दिखाते एवं 'पर्वी' (नागपंचमी के व्यंजन, कटहल का कोवा, लावा एवं नगद राशि) माँगते हैं।

पोआरी गाँव (उपरोक्त) के नागेश्वर स्थान का वर्णन बिहार सरकार पुरातत्त्व विभाग के गजेटीयर में भी उपलब्ध है।

***

## "बारह महीनों में विशेष है श्रावण मास" का शेषांश, ( पृ.15 से )

जाता है। इसीलिए शैवदर्शन में किसान, ईश्वर अथवा देव को कृषि संस्कृति के जीवन से अलग करके नहीं देखा जा सकता, न ही सांस्कृतिक मूल्यों को अथवा कृषि लोक की संस्कृति को मात्र संरचनावादी अथवा तत्त्ववादी माना जा सकता है।

द्वन्द्व की निरन्तरता के कारण इसका विखण्डन किया जाना भी सम्भव नहीं है। कृषि-संस्कृति से जुड़े हुए लोक के ईश्वर और जीवन, देव और कृषि उत्पाद, बैल और नन्दी, मिट्टी और नदी, प्रकाश और अग्नि, बरगद और ग्रहण, गोवर्धन और साहड़ा देव, धान की बालियाँ और अन्नपूर्णा देवी, गेहूँ के बीजों का अंकुरण और देवी पूजा को अलग-अलग विखण्डित करके देखा जाना कृषि-संस्कृति में सम्भव नहीं है। उस तरह धार्मिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य और जीवन-मूल्यों की अन्योन्याश्रित शृंखला बनी है, जो सांस्कृतिक परम्परा के रुप में विकसित होकर आधुनिक युग तक आई है और साथ ही साथ प्रकृति के साथ जुड़कर जीवन-मूल्यों का मानवीय-मूल्यों में रूपान्तरण हुआ है। मानव गति के साथ इसमें परिवर्तन होता रहा है। किन्तु कृषि-संस्कृति के उत्पादक सम्बन्धों में परिवर्तन की दिशा और गति के अनुरूप ही परिवर्तन हुआ है। इसीलिए कृषि संस्कृति में संस्कृति और कृषि प्रौद्योगिकी का देवत्व एक साथ दिखायी देता है।

***

# मिथिला में नाग-पूजा का लोकविधान

श्रीमती रंजू मिश्रा*

**उत्तर बिहार के सांस्कृतिक क्षेत्र मिथिला में नाग-पूजा की विशिष्ट परम्परा रही है। यहाँ कुलदेवी के साथ भी प्रतिदिन बिसहरा देवी के रूप में उनकी पूजा होती है। श्रावण मास में नागपञ्चमी, मौनापञ्चमी तथा मधुश्रावणी पर्व के रूप में यहाँ नाग-पूजा होती रही है। यह महिलाओं के द्वारा सम्पन्न की जाती है। अतः इस विशिष्ट परम्परा पर प्रकाश डालने के लिए हमने ऐसी लेखिका से आग्रह किया, जो स्वयं यह पूजा करती रहीं हैं। श्रीमती रंजू मिश्रा ने मेरे आग्रह पर यह लेख प्रेषित किया है, जिसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है।**

मिथिला के सांस्कृतिक क्षेत्र में नाग-पूजा का लोकविधान बहुत विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण है। यह विषहरि पूजा के नाम से प्रचलित है। इस क्षेत्र में विषहरि की नित्य पूजा का विधान है, जो इसके महत्त्व को दर्शाता है। प्रत्येक घर में कुलदेवी 'गोसौन' के समकक्ष ही इनकी पूजा होती है। जहाँ तक मुझे पता है कि ईशान-कोण की पूजा विशेष फलदायी होती है, लेकिन मिथिला में पूजा का स्थान गोसाउन सीर अग्निकोण में ही रहता है, इसका एक कारण भी विषहरि पूजा हो सकती है, क्योंकि विषहरि की पूजा के लिये स्थान दक्षिण का दीवाल ही मान्य है। इस बात से स्पष्ट है कि मिथिला मे नागपूजा कितना महत्त्वपूर्ण है।

**नागपंचमी**

इसे एक लोकपर्व के रुप मे मनाने का विधान है, जो घर-घर मनाया जाता है। नित्य पूजा के अलावा प्रत्येक वर्ष श्रावण कृष्ण पंचमी तिथि को पूरे पारम्परिक विधि-विधान के साथ इसे पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाया जाता है। जिसे मैना पंचमी (मौना पंचमी) के नाम से जाना जाता है। किसी किसी परिवार में यही नागपूजा श्रावण शुक्ल पंचमी को उसी विधान के साथ मनाया जाता है । इसके पीछे एक लोककथा है, जिसके आधार पर लोक में एक मान्यता प्रचलित है कि जिस किसी ने पहली पंचमी को नाग पूजा विषहरि माता की अवहेलना की, उसके परिवार को नाग के क्रोध का सामना करना पड़ा और बहुत विनती के बाद वचन दिया गया कि मै आपकी पूजा करुँगा, मुझे अपने क्रोध से मुक्त करें, मेरे परिवार के लोगों को जीवन दें। तब जाकर नागदेवी का क्रोध शान्त हुआ। वही भुक्तभोगी परिवार (माण्डर मूल के परिवार) शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि को उसी विधान से नाग पूजा करता है, जिसे 'मड़रे-पंचमी' के नाम से जाना जाता है।

* द्वारा श्री बी. के. झा, प्लॉट सं. 270, महामना पुरी कालोनी, बी.एच.यू., वाराणसी

जो जिस पंचमी को करें, उस दिन सुबह ही घर आँगन को गोबर से लीप-पोतकर कर पवित्र किया जाता है । साफ सफाई के बाद प्रत्येक घर में 'पातरि' (खीर का भोग) का विधान है, जिसमें दो तरह का भोग बनता है, एक दूध-चीनी का पायस और दूसरा बखीर- दही और नमक डालकर, जिसे मिथिला में 'घोरजौर' कहा जाता है। गोसाउन सीर में दक्षिण के दीवाल को साफ सफाई करके, फिर से गाय के गोबर से पाँच नाग की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। ये पाँच बहन विषहरि हैं, इनके नाम क्रमशः **जया, विषहरि, शामिबारी, देव** और **दोतलि** हैं। लोकगीतों में भी इन पाँचो बहन का नाम बार-बार आता है। उस आकृति को एक पीले वस्त्र से ढँक दिया जाता है। ढँकने के लिये भी कपड़े के दोनो सिरे को गाय के गोबर से ही चिपकाया जाता है। उसी के नीचे इन नागों की विधिवत् पूजा की जाती है और खट्टा दाड़िम, झौआ (जमीरी) नीबू, नीम का पत्ता, आम की गुठली का गिररी, जिसे मैथिली में पखुआ कहा जाता है, धान का लावा, गाय का दूध चढ़ाया जाता है। किसी किसी परिवार में कुश रखने का भी विधान है। कही-कहीं घर सदस्य की संख्या के हिसाब से भी कुश मे गाँठ देकर रखा जाता है। आँगन में साफ-सुथड़ी और पवित्र स्थान से लायी गयी मिट्टी से दस थुमहा (स्तूपाकार) मनाया जाता है, जिसकी पूजा सिंदूर, पीठा एवं दूर्वा से की जाती है। घर के दरवाजे के दोनो ओर गोबर से नाग की आकृति बनायी जाती है, और सिंदूर लगाया जाता है। घर के सभी सदस्य खाली पेट सबसे पहले नीम के पत्ते और जम्बीरी नीबू का रस मुँह में डालते हुए अपने-अपने शब्दों में मन्त्र का उच्चारण करते हैं, जिसका यह भाव रहता है-

दस थुमहा (स्तूपाकार) आकृति

*'हे विषहरि माता! मेरे उपर आँख आन्हर और दाँत को कोत (खट्टा) किये रहिये।'*

ये कहते हुए नीम पत्ती को नीबू रस के साथ चबाते हैं और फिर थूक देते हैं। फिर खीर और घोरजौर प्रसाद-स्वरुप खाया जाता है।

सन्ध्याकाल में 'गोसौनसीर' में आम की गुठली के सूखे छिलके में दीप जला कर विषहरि को साँझ दिखाया जाता है। आँगन में बने मिट्टी के उस स्तूपाकार थुम्हे को घर के सभी कोने में रख दिया जाता है। मान्यता है कि इससे दसो दिशाओं से रक्षा होती है।

सन्ध्या में लाबा छिड़कने का विधान है। बाँस की एक डलिया में निम्नलिखित वस्तुएँ एकत्रित की जाती है- 1. चूहे के बिल की मिट्टी, 2. कपास के बीज, जिसे मैथिली में 'बंगौड़' कहा जाता है, 3. धान का लावा एवं 4. कँटैल (लाख का टुकड़ा)। इन्हें मिला कर एक शाबर मन्त्र से अभिमन्त्रित किया जाता है। जिस घर में अभिमन्त्रित करने योग्य व्यक्ति होते हैं, वे तो स्वयं खड़ाँऊ पहनकर मन्त्र पढ़ते हुए इसे अपने आलय में बिखेरते हैं।

अभिमन्त्रित करने की इस प्रक्रिया में जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसका अर्थ है कि "हे सर्प, आप हमारे इस आलय में क्रीडा करते हुए निवास करें, जहाँ बिच्छू आदि विषैले जीव भी रहते हैं, लेकिन हमें कोई नुकसान

नहीं पहुँचाबें। पशु-पक्षी आप सब पर चोट करते हैं, नाग अपनी कुण्डली को फाड़कर मरते हैं। हे ईश्वर महादेव एवं गौरी पार्वती, आप की दुहाई है"। इस अर्थवाले एक शाबर मन्त्र को तीन बार पढ़ते हैं। जिनके घर में इस मन्त्र को जाननेवाले व्यक्ति नहीं हैं, वे आसपास के दूसरे व्यक्ति से अभिमन्त्रित कराकर अपने आलय में इसे छिड़क लेते हैं। मान्यता है कि इससे हमारे आलय में निवास करनेवाले सर्प हमारी रक्षा करेंगे तथा उनके द्वार जीवन का नुकसान नही होगा। यही पूरा विधान वे लोग भी इसी तरह से करते हैं, जो शुक्लपक्ष की पंचमी को मनाते हैं।

घर के चारों ओर बिखेरा जानेवाला पदार्थ

## मधुश्रावणी

इसी मास में नाग-पूजा से सम्बन्धित एक विशिष्ट पर्व मनाया जाता है- मधुश्रावणी-पूजा। जिस किसी के घर में बेटी का विवाह एक साल के भीतर हुआ है, उनके घर एक विशेष अनुष्ठान के रूप में नागपूजा का विधान होता है। इस पर्व को मनाने के लिए सामान्यत: बेटी को मायके बुला लिया जाता है। मधुश्रावणी का पर्व श्रावण कृष्ण पंचमी से शुरु होकर श्रावण शुक्ल तृतीया को पूर्ण होता है। इस अनुष्ठान में भी प्रमुख रूप से नाग की ही पूजा अपने सुहाग की रक्षा के लिए की जाती है। इस पूजा में विषहरि के अतिरिक्त और बहुत सारे नागों की पूजा होती है। पाँच और कहीं-कहीं सात की संख्या में मिट्टी से नाग की आकृतियाँ बनायी जाती हैं । ससुराल और मायके दोनो स्थानों पर इन नागों का अंकन किया जाता है जिनकी पूजा नयी दुल्हन करती है। इसके अलावा, मैना (हिन्दी में 'मान' के नाम से जाना जाता है) नामक एक पौधे के पाँच पत्ते पर नाग की आकृति बनायी जाती है। इसमें दो पत्तों पर एक सौ की संख्या में नाग की आकृत्ति बनती है। इनमें एक पत्ता शतानुजवैरसी और दूसरे पर शतभगिनी के साथ गोसाउन नाग के पूजन के लिए तैयार किया जाता है। इसके अलावा कुछ और विशिष्ट नागों की पूजा होती है। इनका अंकन भी मैना के पत्ते पर ही होता है। आकृत्ति बनाने के लिये सिंदूर, काजल, चंदन, चावल के पीठा (पिठार) का उपयोग किया जाता है। इन नागों में लीली, चनाई और नाग-दंपत्ति प्रमुख होते हैं। कुल तेरह दिनों तक इन सभी नागों की प्रतिदिन पंचोपचार से पूजा की जाती है। नागों के अतिरिक्त और कई देवी-देवताओं की पूजा होती है, जिनमें गौरी, षष्ठी, शिव, पिंगला, कुसुमावती प्रमुख हैं। जिस घर मे यह पूजा होती है, उस घर में तेरह दिनों तक बहुत ही चहल-पहल और रंजक वातावरण रहता है।

मैना का पौधा

मधुश्रावणी-अल्पना

मान के पत्ते पर नागों का अंकन

नागपंचमी की पूर्व संध्या पर ही कोहबर घर की साफ सफाई होती है। उसे गोबर से लीपा जाता है। जिन-जिन देवी-देवताओं और जितने भी प्रकार के नागों का उल्लेख हुआ है, उनके निमित्त विधानपूर्वक अहिपन या अरिपन (अल्पना) दिया जाता है। पूजा करनेवाली नयी दुल्हन चतुर्थी तिथि को ही नवीन वस्त्र पहनकर नाग-पूजा के निमित्त फूल लोढती हैं, जाही, जूही, कनेर आदि अनेक तरह के फूल-पत्र स्वयं संकलित कर फूल की डाली सजाकर रखती हैं।

पंचमी तिथि को शुभ मुहूर्त के हिसाब से सभी नागों और देवी-देवताओं के साथ पंचोपचार से विधिवत् पूजन.होता है।

इन बारह-तेरह दिनों की पूजा में नाग के विभिन्न रूप और स्वभाव से सम्बन्धित कथा कही जाती है। इनमें कुछ कथाएँ पौराणिक हैं, कुछ लोक-कथाएँ होती हैं। लगभग सभी कथाओं में विषहरि की उत्पत्ति, मनसा देवी और बिहुला की कथा प्रमुख हैं। इस पूजा में नाग की प्रीति के लिए अनेक तरह के पदों में उनके रुप, गुण और लोक-कथा के अनुसार नाग-कुल परिवार का गायन होता है, जो बहुत ही विलक्षण और रोचक होता हैं। पाठकों के लिए इनमें से कुछ यहाँ संकलित हैं-

**दीप दिपहरा जाथु धरा, मोती मानिक भरथु घरा।।**
**नाग बढथु नागिन बढथु, पांचो बहिन विषहारा बढथु।।**
**बाल बसंते भैया बढथु, डाढी खोंढी मौसी बढथु।।**
**आसावरी पीसी बढथु, वासुकी राजा नाग बढथु।।**
**वासुकिनी माय बढथु, खोना मोना मामा बढथु।।**
**राही शब्द लय सूती, कांसा शब्द लय उठी।**
**होइत प्रात सोना कटोरा मे, दूध भात खाइ।।**
**सांझ सुती, प्रात उठी, पटोर पहिरी कचोर ओढी।।**

**ब्रह्माक देल कोदारि, विष्णुक चांछल बाट॥**
**भाग भाग रे कीड़ा मकोड़ा, अही बाट आओता, ईश्वर महादेव॥**
**पड़ल गरुड़ के ठाठ, आस्तिक मुनि आस्तिक मुनी, गरुड़ गरुड़॥**

इस पूरे पूजन के दौरान महिलागण विषहरि माता के गीतों को बहुत ही सुन्दर लय में गाती रहती हैं। यह क्रम सावन की द्वितीया तिथि तक चलता है और तृतीया की पूर्व सन्ध्या पर फिर से सब साफ-सफाई करने के पश्चात् पंचमी-पूजन की तरह सारे कार्य किये जाते हैं। मधुश्रावणी के दिन बृहत् नागपूजा अपने बन्धु-बान्धव, आस-पड़ोस की महिलाओं के सांनिध्य में सम्पन्न होती है । इन तेरह दिनों तक पूजा करनेवाली नवविवाहिता संयम और नियम का पालन करती है। विषहरि सहित नाग-परिवार को प्रणाम कर अपने सोहाग को अचल करने का वरदान माँगती हैं-

**पुरैनिक पत्ता झिलमिल लत्ता, ताहि चढ़ि बैसली विषहरि माता॥**
**हाथ सुपाड़ी खोंइछा पान, विषहरि करती शुभ कल्याण॥**

★★★

# लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला अंक **कृष्ण-भक्ति विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। बिहार प्रदेश में कृष्ण-भक्ति परम्परा का समन्वय हुआ है। यहाँ बंगाल एवं आसाम की भक्तिधारा तथा सांस्कृतिक व्रज-क्षेत्र की दोनों धारा मिश्रित होकर बिहार के साहित्य तथा परम्परा को प्रभावित करती रही है। इस प्रभावग्रहण के कारण बिहार की विशिष्ट कृष्णभक्ति-परम्परा पर यह अंक केन्द्रित प्रस्तावित है। सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल mahavirmandir@gmail.com पर अथवा whatsApp. सं. +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

साथ ही, यह अंक आपको कैसा लगा, इसपर भी आपकी प्रतिक्रिया आमन्त्रित है, जिससे प्रेरणा लेकर हम पत्रिका को और उन्नत बना सकें। अपनी प्रतिक्रिया उपर्युक्त पते पर भेज सकते हैं। डाक से भेजने हेतु पता है- सम्पादक, धर्मायण, महावीर मन्दिर, पटना जंक्शन के निकट, पटना, 800001

धर्मायण, अंक संख्या 3, श्रावण 2047 (9 जुलाई से 6 अगस्त), 1990 ई. से पुनर्मुद्रित।

# देश-विदेश में सर्प पूजा

डा. वीरेन्द्र झा

भारत में सर्पों से त्राण हेतु उन्हें पूजने को विशिष्ट परम्परा रही है- विशेषत: नागपंचमी के दिन। श्रावण शुक्ल पंचमी को ही नागपंचमी कहते हैं, लेकिन लोकाचार अथवा देशभेद वश कहीं-कहीं कृष्णपक्ष की पंचमी को भी नागपूजा की जातो है। नागपंचमी के दिन की पूजा अर्चा बड़ी श्रद्धापूर्वक सम्पन्न होती है। 'वाराह-पुराण' के अनुसार, नागपंचमी के दिन ही ब्रह्मा ने उन्हें अभिशाप और वरदान- दोनों दिये थे। 'व्रत-परिचय' के अनुसार, नागपंचमी मनाने से सर्पभय नहीं रहता तथा **'ॐ कुरुकुल्ये हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र के परिमित जापों से सर्प-विष दूर होता है।

नागपंचमी की कथा है कि माणिकपुर नगर का एक ब्राह्मण, राजा सें दान में प्राप्त खेत जोत रहा था। संयोगवश हल का फाल सर्पों के बिल में चले जाने के कारण उनके सभी संपोले नष्ट हो गये, किन्तु सर्प-दम्पती उस समय बिल में नहीं रहने के कारण बच गये। जब उन्हें यह बात ज्ञात हुई, तब उन्होंने प्रतिशोध में उस ब्राह्मण-परिवार के सभी सदस्यों को डँस लिया। केवल उसकी एक बेटी, जो उस समय ससुराल में रहने के कारण बच गई। उसे भी मारने वे (सर्प-दम्पती) वहाँ पहुँचे, परन्तु वे यह देखकर विस्मित रह गये कि वह तो सर्पों की पूजा-अर्चा में व्यस्त थी। अत: वे सर्प-दम्पती उसे वरदान देकर लौट गये। फलत: उसके पिता, सपरिवार पुनर्जीवित हो गये। कहा जाता है कि कहीं-कहीं तभी से किसान उस दिन हल या फावड़ा नहीं चलाते हैं।

दक्ष की पुत्री कद्रू की कोख से उत्पन्न कश्यप की सन्तान नाग के विषय में कहा जाता है कि उनकी कमर का ऊपरी भाग मनुष्य-जैसा था, किन्तु नीचे सर्पाकार। उनका निवासस्थान पाताल था और राजधानी भोगवती। 'भागवतपुराण' के अनुसार सबसे पहला नाग अनन्त थे।

'वाराहपुराण' के अनुसार, सृष्टि के आरम्भ में कश्यप हुए थे। उनका विवाह दक्ष प्रजापति की तेरह पुत्रियों से हुआ था। उनमें अन्यतम कद्रू से उत्पन्न पुत्र- अनन्त, वासुकि, कम्बल, कोटक, कुलिक, पद्म, महापद्म, शंख और अपराजित- ये सभी नाग कहलाये। उनके रहने के लिए ब्रह्मा ने पाताल, वितल एवं सुतल-ये तीन लोक बनाये। पुराणों के अनुसार, वैसे तो नाग अनेक है. परन्तु प्रसिद्ध केवल आठ है, जिनका कुल अष्टकुल (शेष, वासुकि, कम्बल, कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कलिक) कहलाता है। धरती रूपी गाय को दूहने के समय तक्षक बछड़ा बना था। प्रासाद-निर्माण के क्रम में भी भूमि-पूजन के समय नाग-पूजन होता है। ।

नागों की दस जातियाँ भारत, अफ्रीका, अरब, दक्षिण चीन, फिलीपाइन एवं मलाया प्रायद्वीपों में पायी जाती हैं। कुछ जातियाँ दक्षिण अफ्रीका, वर्मा एवं ईस्ट इण्डीज में भी पायी जाती है। दक्षिण

अफ्रीका में कई तरह के नाग पाये जाते हैं, जिनमें काली गरदनवाला नाग अधिक मिलता है। नागों के ऊपरी जबड़े के अग्रभाग में विष की थैली होती है। जिनके काटने से अधिक-से-अधिक छह घण्टों में ही मृत्यु हो जाती है। विष के दुष्प्रभावों से बचने का एकमात्र उपाय है आक्रान्त भागों को चीरकर वहाँ के रक्त को पूर्णतया निकाल देना, ताकि वह सम्पूर्ण शरीर में न फैले। सर्प-प्रतिदंशविष (Antivenines) की सूई तुरत ही देने से विष से निवृत्ति होती है। काला गरदनवाला नाग शत्रुओं पर कई फुट तक की दूरी से थूकता भी है और यदि उसका थूक आँखों में पड़ जाता है, तो अन्धा हो जाने की सम्भावना रहती है।

नाग, भारत में कहीं-कहीं 'करिया', 'करैत' अथवा 'फेटार' नाम से भी जाना जाता है। वैसे तो वह जमीन पर होनेवाला साँप है, किन्तु कभी-कभी पेड़ पर भी चढ़ जाता है और पानी में भी तैरता है। उसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए गाढ़ा भूरा होता है तथा शरीर पर काली एवं सफेद चित्तियाँ होती हैं। वह साढ़े पाँच से छह फुट तक लम्बा होता है और चिढ़ने पर अपने फण को बहुत भयावने रूप से फैलाता है।

नागिन, सूखे पत्तों का खोता (घोंसला) बनाकर, उसमें बारह से बाईस तक अण्डे देती है, जिनमें प्राय: दो महीनों में आठ से दस इंच तक के सँपोले निकलते हैं। कहा जाता है कि वे नाग से भी अधिक विषैले होते हैं। नाग चूहों, चिड़ियों, मेढ़कों और उनके अण्डों एवं अन्य साँपों को भी खा जाता है।

नागों की एक जाति नागराज (King cobra) है। वह भारत के पूर्वा-दक्षिणी भाग-बंगाल एवं मद्रास में विशेष रूप से पाया जाता है, जो आठ से बारह अथवा पन्द्रह फुट तक लम्बा होता है। वह और अधिक विषैला होता है तथा डँसने के लिए दौड़कर आदमी का पीछा करता है, जिससे बचने की युक्ति है छाते या अन्य वैसी ही कोई वस्तु उसपर फेंकना, ताकि वह उसी में उलझा रहे।

नागों के राजा का नाम तक्षक था। पृथ्वी पर घसीटकर चलने के कारण सर्प 'सरीसृप' नाम से भी जाना जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में सर्पसत्र या नागयज्ञों का उल्लेख मिलता है। जनमेजय ने अपने पिता परीक्षित् के घातक तक्षक नाग से बदला लेने के लिए सर्पयज्ञ किया था। एक सर्पसत्र मरुत् ने भी अपनी मातामही के कहने पर किया था। 'महाभारत' के अनुसार, कृष्ण और अर्जुन ने राजगृह में मणिनाग की पूजा की थी, जहाँ नागमन्दिर था। प्राय: उसी स्थान का नाम आज 'मनियार मठ' है। मोहनजोदड़ो में भी नागपूजा के प्रमाण मिलते हैं।

अनार्यों में भी नागपूजा प्रसिद्ध हो जाने के कारण ही आर्य-संस्कृति में नाग (शेषनाग), बौद्धधर्म में मुचलिन्द नाग एवं जैन-कथाओं में पार्श्वनाथ के छत्र के रूप में शेषनाग को अपनाया गया। इसलिए, नाग को आर्यों से भी प्राचीन माना जाता है।

शेषनाग द्वारा पृथ्वी को धारण करने की कथा बहुप्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक समय पृथ्वी पर नागों का शासन था। इतिहासकार मगध के राजा शिशुनाग एवं नागदर्शन को नागवंशी ही मानते हैं। कुषाण राज्य के पतन के पश्चात् तथा गुप्तवंश के उत्थान से पूर्व दो विभिन्न राजवंशों का शासन माना जाता है, जिनमें नागवंश का शासन उत्तरी भारत में था। सम्भवत:, नागवंश गुप्तों के अधीन रहकर मूल यापन करता रहा। वाकाटक-लेख से ज्ञात होता है कि नाग (भारशिव) राजाओं ने कुषाणों को विनष्ट कर वाराणसी में गंगा के किनारे दश अश्वमेध यज्ञ

किये थे, उसीसे उस स्थान का नाम 'दशाश्वमेध' पड़ा।

मेकेंजी साहब के अनुसार, अमेरिका में भी नागों के वंशज थे। मती नुट्टल के अनुसार, वहाँ भी नागों की पूजा होती थी। मेक्सिको के सबसे बड़े मन्दिर की दीवारों पर सर्पों की चित्रकारी मिली है। वहाँ नागदेवता के मन्दिर भी मिले हैं। जापान में उर्वर देवता के रूप में सर्प-पूजा होती है। नागासाकी में सफेद साँप को तो देवदूत ही माना जाता है, यूनान में भी सर्पपूजा होती थी। सिकन्दर की माँ तो अपने को सर्प ही वंशजा मानती थीं।

चीन का वर्तमान प्रतीक 'ड्रेगन' सर्प ही है। नेपाल में तो भारत की भाँति सर्पपूजा होती आई है। अपने देश में सर्पों की पूजा विविध कामों में होती है। उत्तरी भारत एवं पश्चिम बंगाल में मनसा, जो जरत्कारु मुनि की पत्नी एवं नागराज वासुकि की बहन थी, की पूजा प्रचलित है।

बिहार के अंगक्षेत्र भागलपुर में नागपंचमी के दिन विषहरी माता की पूजा समारोहपूर्वक होती है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में इन्हें 'विषधात्री' कहा गया है, जो मनसा की ही प्रतिमूर्ति हैं। अंगक्षेत्र में प्रचलित बिहुला-विषहरी की कथा काव्यबद्ध है। दक्षिण केरल में 'मन्नारसजा' में नाग का एक सुविख्यात मन्दिर है, जहाँ नि:सन्तान दम्पती विशेष रूप से पूजा-अर्चा करने जाते हैं। मिथिला में ब्राह्मण-कुलोद्भवा नवविवाहिताएँ नागों की प्रतिमा बनाकर एक पखबारा (श्रावण कृष्ण पंचमी से शुक्ल पंचमी तक) बड़ी श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा-अर्चा करती हैं, जिसमें अपने परिवार के सदस्यों के साथ-साथ नागों

## पाठकीय प्रतिक्रिया, पृ. 2 का शेषांश

से पहले रामजी के द्वारा अब उनका अग्नि में विस्थापित करना और उनके प्रतिबिंब को रखने का वर्णन रामचरितमानस में पड़ने पर इसको अधिक से अधिक लोग जान पाए यह अवश्य सोचना था।

आपके आलेख में शम्बूक वध के सन्दर्भ में जो तथ्य एक गहन अध्ययन के पश्चात् रखा गया है, वह बहुत ही ज्ञानवर्धक है एवं निश्चय ही एक साथ कम्ब-रामायण, मनुस्मृति, कालिदास का रघुवंश, आनन्द-रामायण इत्यादि का बहुत ही विस्तार से अध्ययन किया गया है। इस लेख के माध्यम से हम लोगों तक आपके व्यापक अध्ययन का सार पहुंच पाया है तथा तथ्यों का संकलन भी इस विश्वास को दृढ करता है। आपने ठीक ही कहा है कि दुष्ट रावण सीता को हरण करने में सक्षम नही था। भला जिस धनुष को सीता अपने बाल्यावस्था में खेल- खेल में उठा लेती थीं, उसको रावण उठा भी नही पाया था; तो वह सीता को बलपूर्वक हरण कैसे कर सकता था। अध्यात्म-रामायण का प्रसंग भी बिल्कुल समीचीन है। इसके लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। आपसे आग्रह है कि ऐसे लेखों से आगे भी हमारा ज्ञानवर्धन करते रहें।

*-दीक्षा, छात्रा, बी.एड., द्वितीय वर्ष*
*पूरनमल वाजोरिया शि. प्र. महा. भागलपुर।*

***

# शेषत्व-समीक्षा

डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य

**शेषनाग के दार्शनिक स्वरूप की एक व्याख्या विशिष्टद्वैत दर्शन में की गयी है। इसके अनुसार 'शेषी' परब्रह्म हैं और 'शेष' परब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाले जीवात्मा 'दास' हैं। साथ ही पाँचो तत्त्वों के अधिष्ठाता देवों के भी अंश है। यहाँ इसी आलोक में शेषतत्त्व की समीक्षा की गयी है।**

**नागदेव नमस्तुभ्यं परं ब्रह्मावबोधदम्।**
**धनदं पुत्रदं पूज्यं पातालतलवासिनम्॥**
**शेषिणः शेषभूतं हि हरिसेवापरायणम्।**
**विशिष्टाद्वैतवेत्तारं शेषं मुनिवरं भजे॥**

अर्थात् हे नागदेव आपको नमस्कार है। आप परब्रह्म का परिचय करानेवाले हैं। आप धन देनेवाले तथा पुत्र देनेवाले पूज्य हैं। हे पाताल-लोक के वासी आपको प्रणाम है। शेषी परमात्मा के शेषभूत (विशेषण रूप), हरिसेवा परायण, विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक (रामानुजाचार्य शेषावतार ही हैं), ऐसे शेषमुनि को प्रणाम करता हूँ। मंगलाचरण में ही शेषरूप का संक्षिप्त संकेतात्मक स्वरूप वर्णित है। लेख में इसका विवेचन होगा।

भारतीय वैदिक सनातन संस्कृति के शीर्ष चिन्तन के उत्कृष्ट शाश्वत हितकर ज्ञान-कर्म-संचरण में आध्यात्मिक रहस्य का केन्द्रीकरण है। वह रहस्य तत्त्वज्ञ एवं सूक्ष्मप्रभा का अनुशासन करनेवाले पूर्ववर्ती आचार्य के द्वारा यत्र-तत्र प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः भारत निर्बाध एवं निश्चित रूप से धर्मप्राण देश है। धर्मतत्त्व का निरन्तर आत्मसम्बन्ध जागृति के लिए प्रत्येक मास में पर्व अनुष्ठान, पूजन आदि का विधान किया गया है।

इसी परम्परा में श्रावण मास का सम्बन्ध नागपूजन से है तथा शिवजलाभिषेक से है। परस्पर दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यहाँ पर मैं विशेष रूप से नागपूजन का तात्त्विक रहस्य यथाशक्ति संकेत के रूप में संक्षिप्त शब्दों मे उद्घाटित करूँगा।

मानव परिधि में शारीरिक मानसिक के सर्वथा अशक्यावस्था में पृथक् रूप से एक विशिष्ट शान्ति का स्वीकरण वैश्विक परिधि में सुनिश्चित है। उसी शक्ति को वैदिक शीर्ष ज्ञान के आलोक में परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसे कार्य के रूप में परम, चरम, शाश्वत, अक्षुण्ण, जगन्नियन्ता, जगत्कर्ता, पाता, हर्ता, सर्वसामर्थ्यवान्, सर्वस्वतन्त्र, कर्ता, अकर्ता, अनन्यथाकर्ता एवं अन्यथाकर्ता प्रभृति अनेक शब्दों के द्वारा व्यक्त किया गया है।

सृष्टि के अनिवार्य विधायक तत्त्वों में पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु का निर्धारण किया गया है। उक्त पंचतत्त्वों के सन्तुलन, संरक्षण,

* *व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।*

संवर्द्धन, नियमन के लिए पाँच अधिष्ठाता देव के रूप में विविध नाम-रूप से परब्रह्म शक्ति का संचरण हुआ है।

**आकाशस्य पतिर्विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।**
**वायोः सूर्यः क्षितेरीशः जीवनस्य गणाधिपः॥**

| **तत्त्व** | **स्वामी** |
|---|---|
| आकाश | विष्णु |
| अग्नि | दुर्गा |
| वायु | सूर्य |
| पृथ्वी | शिव |
| जल | गणेश |

भारतीय संस्कृति में चराचर जगत् के शाश्वत रूप संरक्षणार्थ प्रत्येक पदार्थ के अधिष्ठाता देवगण सुनिश्चित हैं। अतः यहाँ प्रत्येक वस्तु पूज्य तथा आदरणीय है। यह दुर्लभ विशिष्ट महिमा सनातन धर्म की है।

इन पाँच अधिष्ठाता देवों के कारण पाँच वैदिक सम्प्रदाय प्रचलित हैं, यथा- वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर एवं गाणपत्य।

मानवेतर प्राणियों में नागदेव का नित्य सम्बन्ध पंचब्रह्म के उपर्युक्त नाम-रूप से है। अमरकोषकार ने तदीश्वरः शेषोऽनन्तः, ये दो पर्याय नागदेव के रूप में नागस्वामी के लिए स्वीकार किया है, जो शेषनाग तथा अनन्तनाग के नाम से वैदिक परम्परा में स्वीकृत हैं। केवल इन दोनों के जीवन चरित्र में एक विस्तृत शोधग्रन्थ की आवश्यकता है।

शेषनाग का सम्बन्ध विष्णु की शय्या के रूप में, शिव के नागहार के रूप में, दुर्गा के साथ अस्त्र-शस्त्र तथा नागहार के रूप में, सूर्यदेव के साथ 7 रथवाही अश्वों की रश्मियों के रूप में, गणेश के साथ सहयोगी मित्र के रूप में संचरित है। अतः सिद्ध

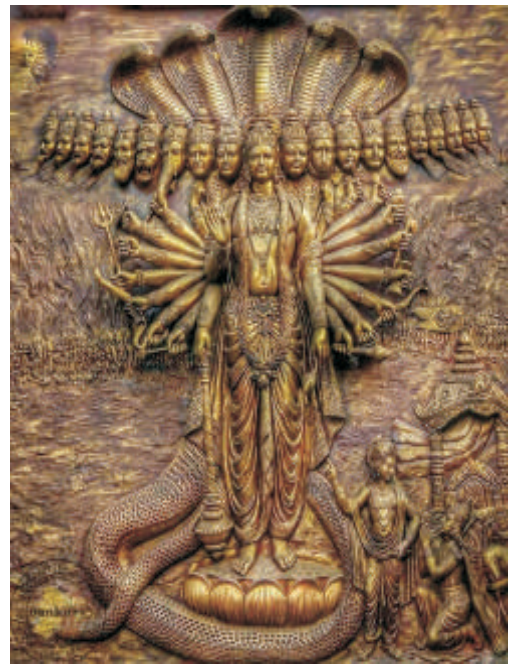

भगवान् का शेषावतार

हुआ कि नागदेव का सम्बन्ध पंचब्रह्मों के साथ उनकी हितकारिता में अग्रसर है। अनादि वैदिक संस्कृति में नागदेव का पूजन शाश्वत अनादि है, विश्व में किसी न किसी रूप में इनकी पूजा होती आ रही है। खजुराहो की गुफाओं में विभिन्न रूपों में नागदेव के चित्रांकन से नागदेव की पूजा-परम्परा की प्राचीनता सुनिश्चित होती है।

पञ्चब्रह्म के विवेचन से सम्बद्ध पञ्चब्रह्मोपनिषद् में भी पृथक् पञ्चब्रह्म की उपासना का विधान किया गया है-

**पञ्चब्रह्मपरं विद्यात् सद्योजातादिपूर्वकम्।**
**दृश्यते श्रूयते यच्च पञ्चब्रह्मात्मकं स्वयम्॥21॥**

अतः पञ्चब्रह्मोपासना में स्वाभाविक रूप से नागदेव-पूजन समाहित है। फलतः नागदेव का पूजन अङ्गदेवता तथा अङ्गी देवता के रूप में प्रचलित है।

प्रकृति सन्तुलन के लिए भी नागपूजन अनिवार्य है।

पञ्चब्रह्म रूप में विशेष रूप से भगवान् विष्णु के साथ शेषनाग का व्यापक, नित्य तथा शाश्वत हितकारी सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध मात्र शेष शब्द की व्युत्पत्ति से प्रतिपादित होता है- शिष्लृ विशेषणे (रुधादिगणीय, परस्मैपद, अनिट्) से भावे घञ् प्रत्यय कर शेष शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। तदनुसार शिष्यते यः स शेषः अर्थात् जो अवशिष्ट है, वह शेष है। वह किसका अवशिष्ट है, अर्थात् यहाँ शेषी कौन है? तो इसी का उत्तर है- शेषिणः, अर्थात् वह परमात्मा का अवशिष्ट है। इस प्रकार यहाँ परमात्मा शेषी है और उनका शेष नागदेव हैं।

विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म एवं जीव के साथ बहुविध सम्बन्धों में एक सम्बन्ध है- शेष-शेषित्वभाव-सम्बन्ध। विशेषण मात्र विशेष्य के लिए होता है। विशेष्य की महत्ता स्वयं के लिए नहीं है। विशेषण की अनुकूलता में विशेष्य का अस्तित्व रहता है। अतः विशेषण सर्वथा सर्वदा विशेष्य के अनुकूल संचरित होता है। स्वामी के अनुकूल सभी समय में हर प्रकार से कर्म करना ही 'दासत्व' है। अतः रामानुज सम्प्रदाय में जीव का निसर्गरूप दास है। इस दास स्वरूप का संचरण सर्वथा एवं सर्वदा शेषनाग के व्यवहार से संचरित है। व्यवहार रूप में शेषनाग तथा सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए प्रभु की आज्ञा का पालन करने हेतु रामानुजाचार्य के रूप में इनका अवतार हुआ है। यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि शेषनाग के दास रूप में इनकी कोई आकांक्षा नहीं थी। मात्र प्रभु की अनुकूलता के लिए तत्पर रहते थे। जिसका वर्णन विशिष्टाद्वैत के 'आळवन्दार स्तोत्र' में किया गया है। 'आळवन्दार स्तोत्र' को वैष्णव सम्प्रदाय में स्तोत्ररत्न की संज्ञा दी गयी है। वैष्णव मन्दिरों में प्रतिदिन इसका पाठ होता है। अत्यन्त भक्तिभाव से आप्लावित 66 श्लोकों का यह स्तोत्ररत्न है। इसके रचयिता आळवन्दार सन्त पूज्य यामुनाचार्यजी हैं। ख्याति है कि भगवान् विष्णु भी यदा-कदा इनसे बातें करने आते थे। शैव-सम्प्रदाय में जो स्थान 'शिवमहिम्नस्तोत्र' का है, वही स्थान वैष्णव-सम्प्रदाय में 'आळवन्दार-स्तोत्र' का है। इसी के चालीसवें श्लोक में शेषस्वरूप का वर्णन किया गया है-

**निवासशय्यासनपादुकांशुको-**
**पधानवर्षातपवारणादिभिः ।**
**शरीरभेदैस्तव शेषतां गतै-**
**र्यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः॥40॥**

अर्थात् हे शेषनाग, आपने भगवान् विष्णु के लिए विविध सेवाभाव में अपने को समर्पित कर शेषत्व को सिद्ध कर दिया है। यथा शय्या, आसन, पादुका, पीताम्बर, उपधान (तकिया) वर्षा और धूप को रोकने के लिए छाता बनकर शेषत्व का संचरण किया है।

शेष अर्थात् दास के रूप में स्वयं प्रस्तुत जीव के सभी कर्तव्य प्रभु की प्रसन्नता के लिए होने चाहिए। विशेष द्रष्टव्य है कि अद्यतन पूजोपासना में इष्टदेव को अनुकूल करने के लिए प्रयास होता है। जबकि इष्टदेव के व्यवहारानुकूल स्वयं को परिवर्तित करना ही सच्ची आराधना है, जो आज तिरोहित हो गया है। यह परम संदेश शेष भगवान् के जीवन चरित से प्राप्त होता है। इस शेष स्वरूप संचरण के लिए पंचस्वरूप का ज्ञान अनिवार्य है।

1. स्वस्वरूप, 2. परस्वरूप, 3. उपायस्वरूप, 4. विरोधीस्वरूप, 5. फलस्वरूप।

स्वस्वरूप का अर्थ जीवात्मस्वरूप है।

परस्वरूप परमात्मस्वरूप कहलाता है। उपायस्वरूप परमात्माप्राप्तिसाधनस्वरूप है। विरोधीस्वरूप परमात्मप्राप्तिबाधकज्ञान होता है। सर्वमत से स्वीकृत है कि संसार परमात्मविरोधी है। वह तमस्, दुःख, अग्नि तथा विष के रूप में वर्णित है। फलस्वरूप स्पष्टतः सायुज्यमुक्ति कैवल्य है। इन पंचस्वरूपों का ज्ञान पूर्णरूप से शेष भगवान् को था। अपने जीवन-व्यवहार से अटल शाश्वत शेषरूप अर्थात् दासभाव का संचार किया तथा कर भी रहे हैं। ऐसे शेष भगवान् की दैनिक उपासना सद्यः जीवनस्वरूप फल दिलानेवाला है। तदनन्तर तो प्रभु की प्राप्त स्वयं हो जाती है।

उक्त पंचस्वरूपों का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को सांसारिक पृष्ठभूमि में भी होना चाहिए। तब कोई भी व्यक्ति निष्फल नहीं होगा। यथा- प्राप्तशक्ति का ज्ञान **स्वस्वरूप** है, तदनुसार लक्ष्य का निश्चय करना **परस्वरूप** है। लक्ष्य के अनुसार साधन की खोज कर उसका ग्रहण करना **उपाय** है। लक्ष्यप्राप्ति में बाधा का ज्ञान होना **विरोधीस्वरूप** है। लक्ष्यानुसार पद की प्राप्ति फलस्वरूप है। उस स्थित में कोई भी व्यक्ति यदि अपने को निर्धारित कर जीवन-यापन करता है तो वह निश्चित सुखी तथा सफल होगा। अर्थात् श्रेय-प्रेय दोनों की पृष्ठभूमि में पंचस्वरूपों का ज्ञान अनिवार्य रूप से हितकारी है। यह ज्ञान शेष भगवान् के जीवन-दर्शन एवं व्यवहार से प्रतिष्ठित है। तभी तो पंचपरब्रह्मों के साथ इनका पूज्य एवं नित्य सम्बन्ध है।

रामानुज-सम्प्रदाय के मन्दिरों में श्रावण शुक्ल पंचमी को विशेष श्रद्धा एवं विश्वास के साथ शेष भगवान् का पूजन होता है। अरवल से अग्निकोण में छह किमी पर अवस्थित प्राचीन वैष्णव सिद्धपीठ सरौती में स्थापकाचार्य वैकुण्ठवासी स्वामी पराङ्कुशाचार्यजी भी नागपञ्चमी के दिन विशेष नाग-पूजन कर धान्य लावा का विकिरण करवाते थे। उन्हें विश्वास था कि आज शेष भगवान् का निश्चय दर्शन होगा। अतः आश्रमवासियों को सावधान किया जाता था कि सूर्यास्त तक प्रायः घर में रहें या सावधान होकर पृथ्वी पर पैर रखें। प्रायः शाम तक शेष शावक का संचरण होता था। तदनन्तर आश्रमवासी दर्शन कर नमनपूर्वक आशीर्वाद लेते थे। उसके पश्चात् स्वामीजी श्रद्धा के साथ शेष शावक को हथेली में रखकर दूर सुरक्षित गोपनीय स्थान पर छोड़ देते थे। यह है शेष भगवान् की महिमा। मैं भी उस समय आश्रमवासी ही था। विशेष ध्यातव्य है कि मनुष्येतर जीवनधारियों में सर्प अधिक संवेदनशील प्राणी है। विलक्षण बात यह है कि वे आज भी वैदिक, पौराणिक साबर तान्त्रिक मन्त्रों का आदर करते हैं। यह मेरा भी निजी अनुभव है।

अतः सभी पाठकों से करबद्ध प्रार्थना है कि इस लेख को पढने के बाद सर्पों को न मारने का संकल्प लें। सर्प से भय अज्ञानताके कारण होता है। प्रायः मनुष्यमात्र का जन्म भय और अज्ञान के मध्य होता है। आश्चर्य है कि परिजनों के द्वारा उसी अज्ञानजन्य भय को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता है। इसलिए बाल्यावस्था से ही ज्ञान तथा निर्भयता का परिजनों के द्वारा संचार होना चाहिए। सर्पों से भय न करें। उनसे प्रेम, श्रद्धा से विनय करने पर वे आपके घर को छोड़ देंगे, पुनः नहीं आयेंगे। कहा भी गया है- **पन्नगास्तान् न हिंसन्ति ये हिंसन्ति पन्नगान्।।** मैं तो मानता हूँ कि **वरः सर्पो न नरः।**

(शेष पृ. 63 पर)

# शिवतत्त्व-मीमांसा

श्री अरुण कुमार उपाध्याय*

**शिवतत्त्व व्यापक है। वैदिक मन्त्रों में रुद्र के सौम्य रूप को शिव की संज्ञा दी गयी है। इसी सौम्य रूप में वे मानव के प्रतिपालक वैद्यनाथ भी हैं। वे ही लिंगरूप में काल गणना के आधार तथा शब्दलिंग के रूप में भाषा ( लिंग्वा- Lingua) भी है, लिपि भी हैं। ज्ञान अव्यक्त होता है अतः शिव को दिगम्बर भी कहा गया है। सौर मण्डल के बाह्य आवरण को महः कहा गया है इस महः के देव 'महोदव' 'वृषभ' के रूप में वर्णित हैं। भगवान् शिव के इस दार्शनिक रूप की व्याख्या यहाँ की गयी है।**

शिवतत्त्व अनन्त हैं। यजुर्वेद के 8 अध्याय केवल रुद्र पर ही हैं, जिनके शान्त रूपों को शिव कहा गया है। इसके कुछ तत्त्वों की व्याख्या कई स्थानों से संकलित है। इसका मूल मेरे पिताजी द्वारा बाल्यकाल में शिक्षा है, जो पण्डित मधुसूदन ओझाजी के ग्रन्थों को पढ़कर तथा सन्तों के आशीर्वाद से विकसित हुई।

**( 1 ) गायत्रीमन्त्र का खण्ड**- गायत्री मन्त्र के 3 पाद हैं। इसके 3 पाद हैं- स्रष्टा रूप ब्रह्मा, तेज रूप में दृश्य विष्णु जिसका रूप सूर्य है, तथा ज्ञान रूप शिव। इसी प्रकार के भी ३ भाग हैं, चतुर्थ अव्यक्त है, जिसे अर्द्धमात्रा कहते हैं।

**( २ ) पूर्णगायत्री**- केवल शिवरूप में, गायत्री का प्रथम पादमूल सङ्कल्प है, जिससे सृष्टि हुई, द्वितीय पाद तेज का अनुभव है, तृतीय पाद ज्ञान है। तीव्र तेज रुद्र है, शान्त रूप शिव है। सौरमण्डल में 100 सूर्यव्यास (योजन) तक तापक्षेत्र या रुद्र है। इसके बाद चन्द्र कक्षा से शिवक्षेत्र आरम्भ होता है, जिससे पृथ्वी पर जीवन है। अतः शिव के ललाट पर चन्द्र है, मूलस्थान को सिर या शीर्ष कहते हैं। शनि कक्षा तक या 1000 व्यास दूरी तक शिव, उसके बाद शिवतर 1 लाख व्यास तक तथा सौरमण्डल की सीमा 157 लाख व्यास तक शिवतम क्षेत्र है। ये विष्णु के 3 पद हैं, जो ताप, तेज और प्रकाश क्षेत्र हैं, या अग्नि-वायु-रवि हैं। उसके बाद ब्रह्माण्ड सूर्य के प्रकाश की सीमा है अर्थात् इसकी सीमा पर सूर्य विन्दु-मात्र दीखता है, उसके बाद वह भी नहीं दीखता। यह सूर्य रूप विष्णु का परम-पद है। सौरमण्डल के बाहर सदाशिव क्षेत्र है। वह ब्रह्माण्ड के आरम्भ से मिलकर साम्ब-सदाशिव है। अप् से सृष्टि हुई, उसमें तरङ्ग या शब्द होने से अम्भ हुआ, जन्मस्थान रूपमें अम्ब हुआ।

**या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।**
**तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्तामि चाकशीहि॥**
(वाजसनेयी सं. 16/2, श्वेताश्वतर उपनिषद् 3/2)

**नमः शिवाय च शिवतराय च॥**
(वाजसनेयी सं. 16/41, तैत्तिरीय सं. 4/5/8/1 मैत्रायणी सं. 2/9/7)

**यो वः शिवतमो रसः तस्य भाजयते ह नः।**
(अघमर्षण मन्त्र, वाजसनेयी सं. ११/५१)

*भारतीय पुलिस सेवा (अ.प्रा.)सी./47, (हवाई अड्डा के निकट) पलासपल्ली, भुवनेश्वर।

**सदाशिवाय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि तन्नो साम्बः प्रचोदयात्।**

(वनदुर्गा-उपनिषद् १४१)

**शतयोजने ह वा एष ( आदित्य ) इतस्तपति**

(कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् ८/३)

**स एष ( आदित्यः ) एकशतविधस्तस्य रश्मयः।**
**शतविधा एष एवैक शततमो य एष तपति॥**

(शतपथ-ब्राह्मण१०/२/४/३)

**युक्ता ह्यस्य ( इन्द्रस्य ) हरयः शतादशेति।**
**सहस्रं है त आदित्यस्य रश्मयः॥**

(इन्द्रः=आदित्यः)

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण१/४४/५)

**असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।**
**ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रोऽवैषां हेड ईमहे॥**

(वा.यजु.१६/६)

**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।**
**समूळ्हमस्य पांसुरे॥**

(ऋक् १/२२/१७)

**तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।**
**दिवीव चक्षुराततम्।** (ऋक् १/२२/२०)

**खव्योम खत्रय खसागर षट्क-नाग**
**व्योमाष्ट शून्य यम-रूप-नगाष्ट-चन्द्राः।**
**ब्रह्माण्ड सम्पुटपरिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरा**
**दिनकरस्य कर-प्रसाराः।**

(सूर्य-सिद्धान्त १२/ ९०)

ज्ञानरूप में गुरु-शिष्य परम्परा का प्रतीक वट है। जैसे वटवृक्ष की शाखा जमीन से लगकर अपने जैसा वृक्ष बनाता है, उसी प्रकार गुरु अपना ज्ञान देकर शिष्य को अपने जैसा मनुष्य बनाता है। मूलवृक्ष शिव है, उससे निकले अन्य वृक्ष लोकभाषा में दुमदुमा (द्रुम से द्रुम) हैं। दुमदुमा हनुमान् का प्रतीक है।

**वटविटपसमीपे भूमिभागे निषण्णं**
**सकलमुनिजनानां ज्ञानदातारमारात्।**
**त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं**
**जनन-मरणदुःखच्छेददक्षं नमामि॥११॥**

(दक्षिणामूर्तिस्तोत्र)

**( ३ ) मनुष्य रूप में**- कूर्म, वायु, ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में ज्ञान अवतार के रूप में शिव के २८ अवतार वर्णित हैं। प्रथम स्वायम्भुव मनु (२९१०२ ई. पू.- ब्रह्माण्ड पु.) को ब्रह्मा भी कहा है, जिन्होंने सबसे पहले वेद की सृष्टि की। सभी अवतार २८ व्यास हैं- अन्तिम कृष्णद्वैपायन व्यास महाभारत काल में थे। कूर्मपुराण में इनको शिव का अवतार कहा है।

११वें ऋषभदेव को जल-प्रलय के बाद पुनः सभ्यता स्थापित करने के लिये विष्णु अवतार भी कहा है।

**( ४ ) कालरूप**- अव्यक्त विश्व से व्यक्त विश्व होने पर ताप, तेज आदि के भेद हुये, जो इनकी कला हैं। भेदों में परिवर्तन का अनुभव काल है। परिवर्तन की क्रिया विष्णु, तथा उसका अनुभव या माप शिव है। निर्माण या परिवर्तन यज्ञ है, अतः शिव और विष्णु दोनों को यज्ञ कहा गया है। परिवर्तन के अनुसार ४ प्रकार के काल तथा ४ पुरुष हैं-

**( क ) क्षरपुरुष**- नित्यकाल-जो स्थिति एक बार चली गयी, वह वापस नहीं आती है, बालक वृद्ध हो सकता है, वृद्ध बालक नहीं। अतः इसे मृत्यु भी कहते हैं।

**( ख ) अक्षरपुरुष**- जन्यकाल-क्रियात्मक परिचय अक्षर है। यज्ञचक्र से काल की माप होती है अतः इसे जन्य कहते हैं। प्राकृतिक चक्रों दिन, मास, वर्ष से काल की माप होती है।

**( ग ) अव्ययपुरुष**– पुरुष में परिवर्तन का क्रम अव्यय है, क्योंकि कुल मिलाकर कोई अन्तर नहीं होता, एक जगह जो वृद्धि है उतना दूसरे स्थान पर क्षय होता है। अतः इसे अक्षय काल कहते हैं।

**कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो** (गीता ११/३२)

**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।**
**अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥१०॥**
**एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः॥१६॥**

(गीता, ३)

**कालः कलयतामहम्** (गीता, १०/३०)

**अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।**

(गीता १०/३३)

(घ) अतिसूक्ष्म या अतिविराट् हमारे अनुभव से परे है; अतः वह परात्पर पुरुष तथा उसका काल परात्पर काल है (भागवतपुराण, ३/११)।

**( ५ ) काल के शिव रुद्ररूप**– विश्व की क्रियाओं का समन्वय नृत्य है। जब क्रियाओं का परस्पर मेल होता है तो वह लास्य है, अतः इससे रास रूप सृष्टि होती है। जब क्रियाओं में ताल–मेल नहीं होता तो वह शिव (रुद्र) का ताण्डव होता है जिससे प्रलय होता है। वर्ष में संवत्सर को अग्नि रूप कहते हैं, इसका आरम्भ संवत् जलाने से होता है। धीरे–धीरे अग्नि खर्च होती रहती है। जब बिल्कुल खाली हो जाती है, तो फाल्गुन मास होता है। फल्गु = खाली (फल्ग्व्या च कलया कृताः= असत् से सत् की सृष्टि हुयी– गजेन्द्रमोक्ष)।

यह खाली बाल्टी जैसा है, अतः इसे दोल पूर्णिमा भी कहते हैं। संवत्सररूप सृष्टि का अन्त शिव का श्मशान है, जिसके बाद पुनः संवत् जला कर नया वर्ष आरम्भ होता है। अतः फाल्गुन मास शिवमास है। मास में शुक्लपक्ष में चन्द्र का प्रकाश बढ़ता है, अतः यह रुद्ररूप है। कृष्णपक्ष शिव है। कृष्णपक्ष में भी रात्रि को जब चतुर्दशी तिथि होगी तब शिवरात्रि होगी, क्योंकि १४ भुवन हैं, जो तेज शान्त होने से उत्पन्न हुये हैं। शान्त या शिव अवस्था में ही सृष्टि होती है। जिस विचार से सृष्टि सम्भव है वह सङ्कल्प है–

**तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥**

(यजुर्वेद, ३४/१–५)।

अतः फाल्गुन कृष्णपक्ष १४ (रात्रिकालीन) तिथि को महाशिवरात्रि होती है।

**( ६ ) लिङ्ग**– लीनं+गमयति = लिंग।

३ प्रकार के लिंग हैं–

**मूलस्वरूपलिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृतः।**
**सूक्ष्मत्वात्कारणत्वाच्चलयनाद् गमनादपि।**
**लक्षणात्परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते॥**

(योगशिखोपनिषद्, २/९, १०)

**( क ) स्वयम्भूलिङ्ग**– लीनं गमयति यस्मिन्मूलस्वरूपे। जिस मूल स्वरूप में वस्तु लीन होती है तथा उसी से पुनः उत्पन्न होती है, वह स्वयम्भू लिंग है। यह एक ही है।

**( ख ) बाणलिङ्ग**– लीनं गमयति यस्यान्दिशि– जिस दिशा में गति है वह बाणलिंग है। बाणचिह्न द्वारा गति की दिशा भी दिखाते हैं। ३ आयाम का आकाश है, अतः बाणलिंग ३ हैं।

**( ग ) इतरलिङ्ग**– लीनं गमयति यस्मिन् बाह्यस्वरूपे– जिस बाहरी रूप या आवरण में वस्तु है वह इतर (other) लिंग है। यह अनन्त प्रकार का है, पर १२ मास में सूर्य की १२ प्रकार की ज्योति के अनुसार इसे १२ ज्योतिर्लिंगों में विभक्त किया गया है।

**आधिदैविक**- आकाश में विश्व का मूलस्रोत अव्यक्त लिंग है, ब्रह्माण्डों के समूह के रूप में व्यक्त स्वयम्भू लिंग है। ब्रह्माण्ड या आकाशगंगा से गति का आरम्भ होता है, अतः यह बाण-लिंग है। सौरमण्डल में ही विविध सृष्टि होती है; अतः यह इतरलिंग है।

**आधिभौतिक**- भारत में अव्यक्त स्वयम्भूलिंग भुवनेश्वर का लिंगराज है, जो जगन्नाथ धाम की सीमा है। वेद में उषासूक्त (ऋक्, १/१२३/८)में पृथ्वी परिधि का १/२ अंश = ५५.५ कि.मी. धाम है, जगन्नाथ मन्दिर से उतनी दूरी पर एकाम्रक्षेत्र तथा लिंगराज है। व्यक्त स्वयम्भूलिंग ब्रह्मा के पुष्कर क्षेत्र की सीमा पर मेवाड़ का एकलिंग है। त्रिलिंग क्षेत्र तेलंगना है, जो अब नया राज्य बना है। जनमेजय काल में यह त्रिकलिंग का भाग था। १२ ज्योतिर्लिंग भारत के १२ स्थानों में हैं।

**आध्यात्मिक**- शरीर में मूलाधार में स्वयम्भूलिंग है क्योंकि यहाँ के अंगों से प्रजनन होता है। शरीर के भीतर श्वास और रक्तसञ्चार हृदय के अनाहत चक्र से होते हैं अतः यह बाणलिंग है। विविध वस्तुओं का स्वरूप आँख से दीखता है तथा मस्तिष्क द्वारा बोध होता है, अतः इसके आज्ञाचक्र में इतर लिंग है।

**योनिस्थं तत्परं तेजः स्वयम्भूलिङ्गसंस्थितम्।**
**परिस्फुरद्वादिसान्तं चतुर्वर्णं चतुर्दलम्।**
**कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसंगतम्।**
**हृदयस्थे अनाहतं नाम चतुर्थं पद्मजं भवेत्।**
**पद्मस्थं तत्परं तेजो बाणलिङ्गं प्रकीर्त्तितम्।**
**आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम्।**
**तुरीयं तृतीयलिङ्गं तदाहं मुक्तिदायकः।**

(शिवसंहिता, पटल ५)

**(७) शब्दलिंग**- अव्यक्त शब्दों को व्यक्त अक्षरों द्वारा प्रकट करना भी लिंग (Lingua = language) है। लिंगपुराण में अलग अलग उद्देश्यों के लिये अलग अलग लिपियों का उल्लेख है-

**शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टस्त्रिंशदाक्षरम्।**
**मेधाकरमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम्॥८३॥**
**गायत्रीप्रभवं मन्त्रं हरितं वश्यकारकम्।**
**चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम्॥८४॥**
**अथर्वमसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम्।**
**अभिचारिकमत्यर्थं त्रयस्त्रिंशच्छुभाक्षरम्॥८५॥**
**यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चत्रिंशच्छुभाक्षरम्।**
**कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा॥८६॥**
**त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सहलोहितम्।**
**सामोद्भवं जगत्याद्यं वृद्धिसंहारकारकम्॥८७॥**
**वर्णाः षडधिकाः षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु।**
**पञ्चमन्त्रास्तथालब्ध्वा जजाप भगवान्हरिः॥८८॥**

(लिङ्गपुराण १/१७)

गायत्री के २४ अक्षर- ४ प्रकार के पुरुषार्थ के लिये।

कृष्ण अथर्व के ३३ अक्षर- अभिचार के लिये।

३८ अक्षर- धर्म और अर्थ के लिये (मयलिपि के ३७ अक्षर = अवकहडाचक्र+ ॐ)

यजुर्वेद के ३५ अक्षर- शुभ और शान्ति के लिये- ३५ अक्षरों की गुरुमुखीलिपि।

साम के ६६ अक्षर- संगीत तथा मन्त्र के लिये।

**(८) दिगम्बर**- ज्ञान अव्यक्त होता है, अतः शिव को दिगम्बर कहा गया है। क्रिया व्यक्त होती है- उसमें भीतरी गति कृष्ण तथा बाह्यगति जो दीखती है वह शुक्ल है। अतः क्रिया या यज्ञरूप विष्णु का शरीर कृष्ण पर उनका वस्त्र श्वेत है। हम ज्ञान या क्रियारूप की ही उपासना करते हैं (२ प्रकार

की निष्ठा), पदार्थ रूप ब्रह्मा की नहीं। शैव और वैष्णव के समान दिगम्बर और श्वेताम्बर मार्ग जैनधर्म में हैं।

**लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।**
**ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।**

(गीता३/३)

**नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय**
**तस्मै नकाराय नमः शिवाय।१।**
**दिव्याय देवाय दिगम्बराय**
**तस्मै यकाराय नमः शिवाय।५।**

(शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र)

**शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।**
**प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥**

(विष्णुस्तोत्र)

**( ९ ) महादेव**– किसी पुर या वस्तु का प्रभाव क्षेत्र महः है। आकाश में यह सौरमण्डल का बाहरी आवरण है। इसके देवता वैदिक महोदेव (महो देवो मर्त्यां आ विवेश– ऋ. 4. 58.03) हैं। जिस मनुष्य में यज्ञरूपी वृषभ रव करता है, वह महादेव के समान पूजनीय है। अतः यज्ञसंस्था आरम्भ करनेवाले पुरु को सम्मान के लिये पुरु–रवा कहा गया और भोजपुरी में आज भी सम्मान के लिये 'रवा' सम्बोधन होता है। मनुष्य रूप में शिव के ११वें अवतार को भी ऋषभदेव कहा गया (कूर्मपुराण, अध्याय १०)। इन्होंने ३ प्रकार के यज्ञों असि–मसि–कृषि का पुनरुद्धार (ऋग्वेद, १०/१६६ सूक्त के ऋषि) किया। अतः इनको स्वायम्भुव मनु (ब्रह्मा) के वंशज कहा गया (भागवतपुराण, अध्याय ५/३–४, विष्णुपुराण, २/१/२७)। यह इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थङ्कर हुये। महः की सीमा महावीर है जो हनुमान् रूप में शिव के पुत्र या अवतार हैं। जब अपना युग समाप्त होता है तब पुत्र का आरम्भ होता है। अतः तीर्थङ्कर परम्परा के अन्तिम को भी महावीर कहा गया।

**( १० ) प्राणरूप**– किसी भी पिण्ड में स्थित ब्रह्म है। प्राणरूप में गति होने पर वह रं है। उसके कारण क्रिया होने पर वह कं (कर्त्ता) है। शान्त अवस्था शं है, जिसमें सृष्टि बनी रहती है। तीनों का समन्वय है शंकर = शं + कं + रं। ब्रह्म को 'तत्सत्' कहते हैं। 'गतिशील होने पर रं है। व्यक्ति का निर्देश (तत्) नाम से होता है। अतः व्यक्ति के प्राण निकलने पर उसे तत्सत् के स्थान पर राम (रं)– नाम सत् कहते हैं।

**प्राणो वै रं प्राणे हीमानि भूतानि रमन्ते।**

(बृहदारण्यक–उपनिषद्, ५/१२/१)

**प्राणो वै वायुः।**

(मैत्रायणी–उपनिषद्, ६/३३)

**तत्सदिति निर्देशः ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः॥**

(गीता, १७/२३)

**( ११ ) मृत्युञ्जय**– नित्य काल के रूप में शिव मृत्यु हैं; अतः मृत्यु को जीतने के लिये उनके महामृत्युञ्जय मन्त्र का पाठ होता है।

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**
**उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥**

(ऋग्वेद ७/५९/१२, अथर्व,१४/१/१७, वाजसनेयी यजुर्वेद, ३/६०, तैत्तिरीय सं. १/८/६/२)

हम ३ अम्बक (सृष्टि के ३ स्रोत, पृथ्वी–आकाश के ३ जोड़े) रूप में शिव की पूजा करते हैं, जिससे हमें सुगन्धि (पृथ्वी तत्त्व का गुण गन्ध है, भौतिक सम्पत्ति की वृद्धि सुगन्धि है) मिले तथा उससे अपनी पुष्टि हो। शिव के ज्ञान तथा प्रसाद से मनुष्य मृत्यु के बन्धन से वैसे ही मुक्त हो जाता है जैसे वटवृक्ष से उसका फल स्वतः गिर जाता है।

३ अम्बकों (पूर्णविश्व, ब्रह्माण्ड, सौरमण्डल) का क्षेत्र गौरी है, जिनको त्र्यम्बका कहते हैं-

**सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।**
**शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते॥**

(दुर्गासप्तशती, ११/१०)

**तिस्रो मात 'स्त्रीन्पितृ'न्बिभ्रदेक**
**ऊर्ध्वतस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।**
**मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे**
**विश्वमिदं वाचमविश्वमिन्वाम्॥**

(ऋग्वेद, १/१६४/१०)

**तिस्रो भूमीर्धारयन्त्री रुतद्यू-**
**न्त्रीणि व्रताविदथे अन्तरेषाम्।**
**ऋतेनादित्यामहिवो**
**महित्वं तदर्यमन्वरुणमित्रचारु॥**

(ऋग्वेद, २/२७/८)

**(१२) कालचिह्न**- पृथ्वी पर काल माप का केन्द्र शून्य देशान्तर है, जहाँ के समय को पृथ्वी का समय कहते है। अभी ग्रीनविच (लन्दन, इंगलैण्ड) की देशान्तर रेखा को शून्य अंश मानते हैं। पहले विषुवरेखा पर स्थित लंका (लक्का दीव- मालदीव क्षेत्र में) को शून्य देशान्तर पर मानते थे। अतः वहाँ का शासक कुबेर था- कु = पृथ्वी, बेर = समय। समुद्र में लंका डूब जाने पर उसी रेखा पर तत्कालीन कर्करेखा पर स्थित उज्जैन को शून्य देशान्तर कहा गया। यहां का समय ही पृथ्वी के लिए काल (समय) है, अतः यहाँ के शिव को महाकाल कहते हैं। शिवलिंग पर जल डालने केलिए घट रखते हैं। इसमें नीचे के छेद से बून्द-बून्द जल गिरता है। समय माप के लिए भी ऐसा ही घट रहता था जिसमें छोटा छेद करते थे। इससे जितने समय में जल निकलता था, वह घटी (२४ मिनट) हुआ, क्योंकि घट द्वारा इसकी माप हुई। घटी से ही लोकभाषा में घड़ी हुआ है। शिव का त्रिशूल भी समय माप का साधन है। दोपहर से समान समय पहले तथा बाद में एक स्तम्भ (शंकु) की छाया लेते हैं। उन दो छाया के बीच की रेखा उत्तर दिशा बताती है। उसकी लम्बाई उस स्थान का अक्षांश तथा सौरवर्ष में सूर्य की क्रान्ति बताती है। शिवपुराण में १२ अंगुल का शिवलिंग कहा गया है। ज्योतिषवेध के लिए भी १२ अंगुल का शंकु होता है। स्तम्भ की उंचाई कितनी भी हो सकती है, उसके १२ वें भाग को १ अंगुल मान लेते हैं।

**लिङ्गं प्रमाणं कर्तृणां द्वादशाङ्गुलमुत्तमम्॥**

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता, ११/८)

**तन्मध्येस्थापयेच्छंकुं कल्पनाद्द्वादशाङ्गुलम्॥**

(सूर्यसिद्धान्त, ३/२)

**(१३) पञ्चमुखशिव**- इसके कई रूप हैं। आकाश में विश्व के ५ पर्व ही शिव के ५ मुख हैं- स्वायम्भुव मण्डल (अनन्तविश्व), परमेष्ठी मण्डल (ब्रह्माण्ड, जिसमें १०० अरब तारा हैं), सौरमण्डल (सूर्य का प्रभावक्षेत्र या वाक्), चान्द्रमण्डल (चन्द्र कक्षा को घेरनेवाला गोल), भूमण्डल (पृथ्वीग्रह)।

**स ऐक्षत प्रजापतिः (स्वयम्भूः) इमं वा आत्मनः प्रतिमामसृक्षि। आत्मनो ह्येतं प्रतिमा-मसृजत। ता वा एताः प्रजापतेरधिदेवता असृज्यन्त- (1) अग्निः (तद् गर्भितो भूपिण्डश्च), (2) इन्द्रः (तद् गर्भितः सूर्यश्च), (3) सोमः (तद् गर्भितः चन्द्रश्च), (4) परमेष्ठी प्राजापत्यः (स्वायम्भुवः)**

-शतपथ ब्राह्मण (११/६/१/१२-१३)

**स्वयम्भूः**- शतपथ बाह्मण (६/१/१/८), **परमेष्ठी**- वारि वा अप् रूप- शतपथ बाह्मण

(६/१/१/९-१०), **सूर्य त्रयी विद्या** (श्रुतेः त्रीणि पदाः)- शतपथ बाह्मण (११/६/१/१), **भूमण्डल** भूपिण्डः -शतपथ बाह्मण (६/१/२/१), **भूक्षेत्र**- शतपथ ब्राह्मण (६/१/२/३), **चान्द्र मण्डल** -शतपथ बाह्मण (६/१/२/४)

इन मण्डलों के देव हैं- ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम, अग्नि।

इनके मुख्य तत्त्व ५ महाभूत हैं- आकाश (प्रायः खाली स्थान), वायु (ब्रह्माण्ड से गति का आरम्भ), अग्नि (सूर्य आदि ताराओं का तेज), आप (अपेक्षाकृत शान्त चन्द्र मण्डल), पृथ्वी (ठोस भूमि)।

**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्यो अन्नम्। अन्नात् पुरुषः।**

(तैत्तिरीय उपनिषद्, २/१/३)

**सो अपो (५ महाभूतों) अभ्यतपत्, ताभ्यो अभितप्ताभ्यो मूर्तिः (ठोस पिण्ड, पृथिवी) अजायत।**

**या वै सा मूर्तिः अजायत अन्नं वै तत्।**

(ऐतरेय उपनिषद्, १/३/२)

५ महाभूतों का प्रतीक कलश है, उसके भीतर ताम्र हिरण्यगर्भ है, जिससे ये उत्पन्न हुए। आम्रपल्लव ओषधि-वनस्पति है- जिससे अन्न तथा पुरुष हुए।

आकाश की ५ सृष्टि के प्रतीक माहेश्वर सूत्र के प्रथम ५ वर्ण (५ मूल स्वर) हैं जो नन्दिकेश्वर काशिका के अनुसार सृष्टि आरम्भ के प्रतीक हैं- अ, इ, उ, ऋ, लृ।

आकाश के ५ पर्व या मण्डलों की प्रतिमा मनुष्य शरीर के ५ कोष हैं, जिनके केन्द्र सुषुम्णा के ५ चक्र हैं- विशुद्धि, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान, मूलाधार। इनके बीज मन्त्र आकाश सृष्टि के ५ मूल स्वरों के सवर्ण अन्तःस्थ वर्ण हैं- हयवरट्। लण्। बीजमन्त्रों का क्रम सृष्टि क्रम से लेने पर स्वाधिष्ठान तथा मणिपूर का क्रम आपस में बदल जाता है। ५ कोष- आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, अन्नमय कोष।

**महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं**
**स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।**
**मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं**
**सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे॥**

(सौन्दर्यलहरी, ९)

माहेश्वर सूत्र के स्वर तथा सवर्ण अन्तःस्थ- अइउण्। ऋलृक्। (लृक् अग्नितत्त्व है, जिसका दक्षिण भारतीय उच्चारण लूक है। अतः वायुमण्डल का अग्नि प्रवाह लूक (लू) कहते हैं)।

सवर्ण अन्तःस्थ- हयवरट्। लण्।

आकाश के ५ पर्वों में केवल, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी (अग्नि) का ही अनुभव होता है या दीखते हैं, अतः इनको शिव के ३ नेत्र कहा गया है।

**चन्द्रार्कवैश्वानर( अग्नि )लोचनाय।**

(शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र)

**अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्र-सूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः।**

(मुण्डक उपनिषद्, १/२/४)

शिव के मङ्गल स्मरण के लिए इन ३ नेत्रों का ही स्मरण किया जाता है। इनके वर्णों उ, ऋ, लृ का लगातार उच्चारण उलूलय या हुलहुली (बंगाल, ओड़िशा में) हो जाता है। यही भाषा में होली हो गया है। इन्द्र विजय के बाद उनके स्वागत के लिये यह किया गया था, जिसे उलुलयः कहा गया है।

**उद्धर्षतां मघवन् वाजिनान्युद वीराणां जयतामेतु घोषः।**
**पृथग् घोषा उलुलयः एतुमन्त उदीरताम्॥**
(अथर्व ३१/९/६)

राम के अश्वमेध यज्ञ में भी जब सीता को वाल्मीकि लेकर आये, तो उनके स्वागत के लिये हुलहुली हुयी थी-

**तां दृष्ट्वा श्रुतिमायान्तीं ब्रह्माणमनुगामिनीम्।**
**वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत्॥१२॥**
**ततो हलहलाशब्दः सर्वेषामेवमाबभौ।**
**दुःख-जन्म विशालेन शोकेनाकुलितात्मनाम्॥१३॥**
(रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ७८)

| क्रम | सृष्टिपर्व | मण्डल | देवता | स्वरवर्ण | अन्तःस्थवर्ण | तत्त्व | मनुष्यशरीर के चक्र | कोष |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | स्वयम्भू | ब्रह्मा | अ | ह | आकाश | विशुद्धि | आनन्दमय | |
| २ | परमेष्ठी | विष्णु | इ | य | वायु | अनाहत | विज्ञानमय | |
| ३ | सौर | इन्द्र | उ | व | अग्नि | स्वाधिष्ठान | मनोमय | |
| ४ | चान्द्र | सोम | ऋ | र | आप | मणिपूर | प्राणमय | |
| ५ | भू | अग्नि | लृ | ल | पृथ्वी | मूलाधार | अन्नमय | |

टिप्पणी- यहां अग्नि के २ अर्थों का प्रयोग हुआ है। अग्नि का मूल रूप अग्रि कहा है जिससे परोक्ष में अग्नि हुआ। भारत का अग्नि (अग्रि = अग्रणी) विश्व का भरण करता था, अतः उसे भरत कहते थे। इसी अग्नि या अग्रि को लोकभाषा में अग्रसेन कहा है।

स यदस्य सर्वस्य अग्रं असृज्यत तस्माद् अग्रिः, अग्रिः ह वै तं अग्निः इति आचक्षते परोऽक्षम् (शतपथ ब्राह्मण, ६/१/१/११)

एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्मात् भरतोऽग्नि रित्याहुः।

(शतपथब्राह्मण १/४/२/२, १/५/१/८, १/५/१९/८)

मूल विरल पदार्थ रस से क्रमशः घने रूपों से सृष्टि आरम्भ हुयी पहले घने पिण्ड हुए अतः घने पदार्थ या तेज दोनों को अग्नि कहते हैं। तत्त्व रूप में अग्नि का अर्थ तेज हुआ। पिण्ड रूप में यह पृथ्वी है। क्रमशः सघन बनते पर्वों के कारण सभी ५ पर्वों को भी अग्नि कहा गया है-

पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः (कठोपनिषद्, १/३/१)

इन ५ अग्नि रूप मण्डलों में अन्तिम ३ चिकेत (अलग-अलग स्पष्ट) नहीं हैं, अतः ये नाचिकेत अग्नि हैं, जो शिव के ३ नेत्र हैं।

**क्रमशः (अग्रिम अंक में समाप्य)**

# शूर्पणखा प्रकरण का यथार्थ

आचार्य किशोर कुणाल

**वाल्मीकि-रामायण की अनेक कथाओं और प्रसंगों की एकांगी व्याख्या कर अनेक कुण्ठित आलोचनाएँ गयी हैं। सीता-निर्वासन, शम्बूक-वध के साथ-साथ शूर्पणखा के प्रसंग की भी पूर्वाग्रहसे ग्रस्त होकर व्याख्या की जाती रही है। यहाँ वाल्मीकि-रामायण के गम्भीर अध्येता आचार्य किशोर कुणाल के द्वारा ठोस प्रमाणों के आधार पर यहाँ शूर्पणखा का वास्तविक प्रसंग को उद्घाटित किया गया है, जिससे उन उभी पूर्वाग्रही आलोचकों के द्वारा उठायी गयी शंकाओं का निवारण हो जाता है।- सं.**

शूर्पणखा रावण की सगी बहन थी। मुनि विश्रवा एवं कैकेसी के समागम से रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण का जन्म हुआ था। शूर्पणखा का विवाह दानवराज कालकेय के पुत्र विद्युज्जिह्व के साथ हुआ था। किन्तु रावण ने शूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्व को तलवार से काटकर मार दिया था। वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड के 23 वें सर्ग में यह विवरण मिलता है-

**ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम्।**
**गत्वा तु कालकेयांश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान्॥17॥**
**शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत् तदा।**
**श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम्॥18॥**

*उसके बाद, रावण ने कालकेयों की राजधानी अश्मनगर जाकर बलशाली कालकेयों का कत्ल किया। तदनन्तर शूर्पणखा के बलवान् पति विद्युज्जिह्व को तलवार से काट डाला।*

इस प्रकार शूर्पणखा अपने सहोदर अग्रज रावण के हाथों विधवा बना दी गयी। पति के वियोग में वह दिन-रात विलाप करती रहती। रावण जहाँ भी जाता वहाँ सुन्दरियों का अपहरण उनके रक्षक परिजनों का वध करने के बाद कर लेता था। इस प्रकार बहुत-सी विलपती वनिताओं के साथ जब वह लंका पहुँचा, तब शूर्पणखा सहसा रावण के सामने पृथ्वी पर गिर पड़ी और विलाप करने लगी। उसके नेत्र में आँसू भरे थे और आँखें रोते-रोते लाल हो गयी थीं। फिर भी, वह बोली- 'राजन्। तुम बलवान् हो, इसीलिए तुमने मुझे बलपूर्वक विधवा बना दिया है?''

**सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत्।**
**कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात्॥26॥**

(7.24.26)

*आँसुओं से रुँधी आँखोंवाली, लाल लाल आँखों वाली वह बोली कि हे राजन्, आप बलवान् हैं, आपने जबरदस्ती मुझे विधवा बना दिया है।*

आगे भी विलाप करती हुई शूर्पणखा कहती है-

**एते वीर्यात्त्वया राजन्दैत्या विनिहता रणे।**
**कालकेया इति ख्याता सहस्राणि चतुर्दश॥27॥**
**तत्र मे निहतो भर्ता गरीयाञ्जीवितादपि॥**
**स त्वया दयितस्तत्र भ्रात्रा शत्रुसमेन वै॥28॥**
**या त्वयास्मि हता राजन्स्वयमेवेह बन्धुना।**

**दुःखं वैधव्यशब्दं च दत्तं भोक्ष्याम्यहं त्वया॥29॥**
**ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि।**
**तं निहत्य रणे राजन् स्वयमेव न लज्जसे॥30॥**
**एवमुक्तस्तया रक्षो भगिन्या क्रोशमानया।**
**अब्रवीत्सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः॥31॥**

(वा. रा. उत्तर. 24. 26-31)

अर्थात् हे राजन्! तुमने अपने बल-विक्रम से रणभूमि में 14 हजार कालकेय दैत्यों का वध कर दिया। उन्हींमें एक महान् बलशाली मेरे पति भी थे। तुमने तो उनका भी वध कर दिया। तुम केवल नाम के मेरे भाई हो। सच तो यही है कि तुम मेरे शत्रु हो। मैं तो अपने सगे भाई के हाथों ही मारी गयी हूँ। तुम्हारे कारण मैं विधवा शब्द का भोग करती रहूँगी। क्यों तुम्हें बेटी या बहन से सम्बन्धित व्यक्ति (जामाता) की रक्षा युद्धभूमि में भी नहीं करनी चाहिए थी? उलटे वे तो तुम्हारे हाथों ही मार दिये गये, फिर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती।' इस प्रकार रोती और कोसती हुई बहन शूर्पणखा के कहने पर रावण ने सान्त्वना देते हुए समझाया।

इस प्रकार, लंका में जन्मी और अश्मनगर में विवाहिता शूर्पणखा दण्डकारण्य में विचरण करने लगी और एक दिन यदृच्छा से वह राम की पंचवटी पहुँच गयी। वाल्मीकि को 'यदृच्छा' शब्द प्रिय बहुत है और इसका प्रयोग वे बार-बार करते हैं। इसका उपयोग गीता में भी हुआ है; किन्तु हिन्दी में यह शब्द प्रचलित नहीं है। यदृच्छा का मोटामोटी अर्थ 'संयोग' है। जब राम वार्ता-प्रसंग में निमग्न थे, तभी एक राक्षसी (शूर्पणखा) वहाँ संयोगवश आ गयी-

**तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः।**
**तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया॥**

**( 3.17.5 )**

वाल्मीकि उस राक्षसी का परिचय देते हैं-

**सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः।**
**भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम्॥**

**( 3.17.6 )**

उस राक्षसी का नाम शूर्पणखा था और वह रावण की बहन थी। उसने देवताओं के समान सुन्दर राम को देखा। तत्पश्चात् वाल्मीकि राम के रूप का वर्णन करते हैं-

**दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम्।**
**गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम्॥7॥**
**सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम्।**
**राममिन्दीवरश्यामं कन्दर्पसदृशप्रभम्॥8॥**
**बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता।**

(3.17.7-8)

अर्थ- *तेज से चमकते मुखवाले, विशाल बाँहों वाले, कमल के पत्ते के समान विशाल आँखों वाले, हाथी के समान पराक्रम भरी चाल से चलनेवाले, जटासमूह को धारण करनेवाले. सुकुमार, महान् सत्त्ववान्, राजा की तरह चँवर डुलाये जाते हुए, कामदेव के समान कान्ति वाले, नीलकमल के समान श्यामवर्ण वाले तथा इन्द्र के समान श्री राम को देखकर वह राक्षसी काममोहित हो गयी।*

इस प्रकार, राम के रम्य रूप को देखकर शूर्पणखा काममोहित हो गयी। आगे बढ़ने से पूर्व आदिकवि महर्षि वाल्मीकि पाठकों को उसकी वृद्धावस्था एवं विकराल कुरूपता की तुलना राम के तारुण्य एवं अपूर्व लावण्य से करते हुए परस्पर विरोध बार-बार बतलाते हैं-

**सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी॥**
**विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा।**
**प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना॥**
**तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।**
**न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना॥**

(अरण्य 8-11)

राम का मुख सुन्दर, मनोहर था। शूर्पणखा खराब मुखवाली यानी कुरूप थी। राम का मध्य भाग (यानी कटि-प्रदेश और उदर) क्षीण था; किन्तु शूर्पणखा बेडौल लम्बे पेटवाली थी। राम के नेत्र विशाल थे; किन्तु शूर्पणखा की आँखें खराब, डरावनी थीं। राम के केश सुन्दर थे; किन्तु उस निशाचरी के बाल ताम्बे- जैसे लाल थे। राम रमणीय रूप वाले थे और राक्षसी बीभत्स एवं विकराल थी। राम का स्वर मधुर था, किन्तु राक्षसी भैरव-नाद करनेवाली कर्कशा थी।

राम तरुण थे; किन्तु शूर्पणखा दारुण वृद्धा थी यानी उसकी बार्धक्य डरावने वाला था। गोविन्दराज ने 'दक्षिण' का अर्थ 'शोभनभाषणकुशलं' किया है यानी सुन्दर भाषण करने में कुशल। वामभाषिणी का अर्थ रामायणशिरोमणि टीकाकार ने दुष्टभाषिणी किया है। राम न्यायपूर्वक वर्तन व्यवहार करनेवाले हैं और शूर्पणखा दुराचारिणी थी। राम सबके प्रिय थे और शूर्पणखा एकदम अप्रिय, डरावनी थी।

वाल्मीकि ने इतने विरोधी विशेषणों का उपयोग यह बतलाने के लिए किया है कि शूर्पणखा जब पंचवटी में राम के पास प्रणय या परिणय-याचना के साथ गयी, तो यह उस विकराल वृद्धा का एकमात्र उद्देश्य नहीं था। यह सत्य है कि अपूर्व-सौन्दर्यशाली राम को देखकर वह काम-मोहित हो गयी। वह चकित भी थी कि उसके सामने जो पुरुष था वह जटाधारी और तापस वेष में होने पर भी पत्नी के साथ था और उसके पास धनुष-बाण भी थे। अतः उसने राम का परिचय और दण्डकारण्य में आगमन का कारण पूछा है-

**शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत्।**
**जटी तापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक्॥12॥**
**आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम्।**
**किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि॥13॥**

(17.12-13)

राम ने अपना सरल और संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया-

**आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः।**
**तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः॥15॥**
**भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः।**
**इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता॥16॥**
**नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः।**
**धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः॥17॥**
**त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा।**
**इह वा किंनिमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः।**

(17.15-18)

*अर्थात् दशरथ नामक राजा थे जो देवताओं के समान पराक्रमी थे या देवताओं में जिनका पराक्रम प्रख्यात, प्रसिद्ध था। मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ और लोक में राम नाम से ख्यात हूँ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है, जिसने सदैव मेरा अनुसरण करने का व्रत ले रखा है और यह विदेह-राज की पुत्री सीता मेरी पत्नी हैं। अपने पिता महाराज दशरथ और माता कैकेयी के निर्देश पर धर्माभिलाषी मैं यहाँ वन में धर्म-परिपालन हेतु आया हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो और कहाँ की (कस्य) रहनेवाली हो और यहाँ किस प्रयोजन से आयी हो, यह ठीक-ठीक बताओ।*

यहाँ गीता-प्रेस में जो पाठ है 'कस्य त्वं कासि कस्य वा' को बड़ौदा संस्करण ने अधिक प्रामाणिक पाठों के आधार पर इस प्रकार प्रस्तुत किया है- 'कथ्यतां कासि कस्य वा।' वाल्मीकि-जैसे महाकवि द्वारा एक ही चरण में दो बार 'कस्य' का प्रयोग खटकता है।

वाल्मीकि रामायण के आलोचनात्मक संस्करण (सम्पादक- पी. सी. दिवंजी, ओरियंटल इन्स्टीच्यूट बड़ौदा, भाग 3, 1963, पृ. 84-85) के अनुसार यहाँ श्लोक संख्या 18 के पूर्वार्द्ध के बाद देवनागरी की 6 पाण्डुलिपियों में एक पंक्ति प्रक्षिप्त है "न हि तावन्मनोद्यङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे।" यह पंक्ति भी अन्य किसी पाण्डुलिपि में उपलब्ध नहीं है, अतः आलोचनात्मक संस्करण के सम्पादकों ने इसे प्रक्षिप्त मानकर हटा दिया है। इससे भी ध्वनित होता है कि शूर्पणखा सुन्दरी नहीं थी, जिसका वर्णन ऊपर आ चुका है। किन्तु देवनागरी की 3 पाण्डुलिपियों तथा तमिल की 1 पाण्डुलिपि में 'न हि' के स्थान पर 'त्वं हि' ऐसा पाठ है। इसी असामान्य पाठ को गीता प्रेस के संस्करण में प्रकाशित कर दिया गया है, जो पूर्णतः प्रक्षिप्त तथा पाठभ्रंश से युक्त है। अतः इस प्रक्षिप्त पाठ के आधार पर कोई विवेचना नहीं की जा सकती है और शूर्पणखा को सुन्दरी युवती नहीं माना जा सकता है।

आगे राम के प्रश्न करने पर शूर्पणखा अपना परिचय इन शब्दों में देती है-

**अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।**
**अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयङ्करा॥**

(अरण्य 17.20)

मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं कामरूपिणी राक्षसी हूँ। सबको डरावने वाली (सूरत या ताकत से?) मैं अकेली इस वन में विचरण करती हूँ।

तदनन्तर वह अपने भाई रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण का परिचय देती है तथा खर और दूषण को अपना भाई बतलाती है, जबकि वाल्मीकि अन्यत्र खर और दूषण को शूर्पणखा का मौसेरा भाई मानते हैं।

सबका परिचय देने के बाद शूर्पणखा अपना असली इरादा बतलाती है-

**तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात्।**
**समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तम॥ ( 3.17 )**

उन सबसे अधिक पराक्रम रखनेवाली मैं तुम्हारे प्रथम दर्शन से ही तुम्हारे प्रति आसक्त हो गयी हूँ; अतः पुरुषों में श्रेष्ठ तुमको पति बनाना चाहती हूँ।

मैं प्रभाव-सम्पन्न हूँ तथा अपनी इच्छा एवं शक्ति से सर्वत्र विचरण करती हूँ। अतः तुम मेरे पति चिरकाल के लिए बन जाओ, इस सीता के साथ क्या करोगे?

**अहं प्रभावसम्पन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी।**
**चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यति॥25॥**

इसके बाद शूर्पणखा ने सीता की निन्दा करते हुए कहा कि यह कराल (करालो दन्तुरे तुङ्गे विशाले विकृतेऽपि च' इति वैजयन्ती) कुरूप और तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं ही तुम्हारे अनुरूप हूँ; अतः मुझे अपनी पत्नी के रूप में देखो :-

**विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव।**
**अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम्॥26॥**

शूर्पणखा निन्दा और धमकी-भरी भाषा में आगे कहती है :-

**इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।**
**अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम्॥27॥**

इस कुरूप, असती, कराल और धँसे हुए पेटवाली स्त्री को तुम्हारे इस भाई के साथ खा जाऊँगी।

शूर्पणखा आगे बोली- तब तुम कामभाव से युक्त होकर मेरे साथ अनेक प्रकार के पर्वत-शिखरों एवं वनों में विचरण करते हुए दण्डकारण्य में विचरण करोगे :-

**ततः पर्वतशृङ्गाणि वनानि विविधानि च।**
**पश्यन् सह मया कामी दण्डकान् विचरिष्यसि॥28॥**

उस दारुण वृद्धा की इस आतुर काम-याचना को सुनकर भगवान् राम को परिहास सूझा। उन्होंने मधुर वाणी में स्मित मुस्कान के साथ कहा-

**कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम।**
**त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता॥**

(अरण्य 18.2)

आदरणीया देवि! मैं विवाहित हूँ और यह मेरी प्रिया पत्नी है। आप जैसी नारियों के लिए सौत के साथ रहना तो दुःखदायी होगा।

राम ने आगे कहा- किन्तु यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। यह शीलवान्, देखने में सुन्दर और पराक्रमी है। इसके साथ पत्नी नहीं है। ये अपूर्व गुणों से सम्पन्न हैं। ये तरुण और देखने में सुन्दर हैं। यदि इन्हें भार्या की चाह होगी, तो तुम्हारे इस रूप के अनुरूप ये उपयुक्त पति होंगे :-

**अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।**
**श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥3॥**
**अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः।**
**अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति॥4॥**

यहाँ 'अकृतदारः' को लेकर बहुत विवाद चलता आया है; बल्कि बवाल-सा मचा हुआ है। सदैव सत्यवादी श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को 'अकृतदारः' (जिन्होंने विवाह नहीं किया है) कहकर-अनृत का आश्रय कैसे लिया। गोविन्दराज ने 'अकृतदारः' का अर्थ 'असहकृतदार इत्यर्थः' लिखा है यानी जिन्होंने अपने साथ भार्या को नहीं रखा है। रामायण-तिलक टीकाकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है- ''अकृतदारोऽकृत- परदारपरिग्रह इति'' यानी जिसने परपत्नी का पाणिग्रहण नहीं किया है। रामायण-शिरोमणि-टीकाकार राम की व्याख्या है- 'अकृतदाराः न कृताः वने स्वीकृताः दाराः येन स'' यानी वन में जिसने किसी को पत्नी नहीं बनाया है। इन टीकाकारों ने इस प्रकार की व्याख्या इसलिए की है कि वे मानते हैं कि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम परिहास में भी अनृत-कथन नहीं कर सकते।

समग्र वाल्मीकि-रामायण में भगवान् श्रीराम ने एक बार हास और एक बार परिहास (शूर्पणखा के प्रसंग में) किया है। अब कोई विकराल बुढ़िया किसी से प्रणय-याचना करे, तो परिहास के सिवा विकल्प क्या होगा? 19वें श्लोक में राम ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह परिहास है:-

**क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंच न।**
**न कार्यः पश्य वैदेहीं कथंचित् सौम्य जीवतीम्॥**

लक्ष्मण! क्रूर संस्कारहीनों के साथ परिहास कभी भी नहीं करना चाहिए। हे सौम्य भ्राता! देखो न, इस समय सीता के प्राण किस कठिनाई से बचे हैं।

इसी प्रकार, वाल्मीकि लक्ष्मण-शूर्पणखा की वार्ता के बाद लिखते हैं कि लक्ष्मण के परिहास को नहीं समझने वाली शूर्पणखा लक्ष्मण की बातों को सत्य मान बैठी:-

**मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा॥13॥**

इस कराल वृद्धा पर दृष्टिपात करने से ही डर लगता था; अतः उसके साथ प्रणय की बात बेतुकी थी। यदि आप इस तथ्य को जान-समझ ले रहे हैं, तो फिर इस प्रसंग को समझने में आपको कोई कठिनाई नहीं होगी; प्रत्युत प्राचेतस द्वारा प्रस्तुत परिहास का प्रहर्ष प्राप्त होगा।

जब राम ने शूर्पणखा को समझाया कि तुम लक्ष्मण को पति बनाकर सौत के भय के बिना उनके साथ आनन्द मनाओ। यह सुनकर शूर्पणखा सुमित्रानन्दन के पास जाकर बेशर्मी से बोली :-

**अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी।**

**मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान् विचरिष्यसि॥7॥**

*लक्ष्मण! तुम्हारे इस रूप के अनुरूप पत्नी मैं ही हूँ। तुम मुझे अंगीकार कर सुखपूर्वक-दण्डक वन में विचरण कर सकोगे।*

शूर्पणखा के इस वचन को सुनकर परिहासपूर्वक लक्ष्मण ने मुस्कुराते हुए कहा:-

**कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।**
**सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि॥8॥**

*क्यों तुम दास की पत्नी बनकर दासी बनना चाहती हो? मैं तो अपने बड़े भाई राम के अधीन हूँ।*

लक्ष्मण ने चुटकी लेते हुए कहा कि तुम मेरे भैया राम की छोटी पत्नी हो जाओ; इससे तुम्हारे सारे मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे और तुम सदा प्रसन्न रहोगी, क्योंकि वे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं:-

**समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी।**
**आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी॥10॥**

इस परिहास एवं व्यंग्य में लक्ष्मण मातृतुल्य सीता के प्रति उन्हीं विशेषणों का प्रयोग करते हैं जिन्हें शूर्पणखा पहले कर चुकी है:-

**एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।**
**भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति॥11॥**
**को हि रूपमिदं श्रेष्ठं संत्यज्य वरवर्णिनि।**
**मानुषीषु वरारोहे कुर्याद् भावं विचक्षणः॥12॥**

लक्ष्मण सीता को विरूपा, कराला, वृद्धा कहते हैं और शूर्पणखा को वरारोहा (सुन्दरी), वरवर्णिनी (श्रेष्ठ रंग वाली) और श्रेष्ठ रूपवती कहते हैं। यदि इसपर भी किसी को परिहास नहीं परिलक्षित होता है, तो यह उसकी बुद्धि की बलिहारी है। ऐसे पुरुषों के लिए वाल्मीकि दुहारा देते हैं कि परिहास में विचक्षण न होने के कारण शूर्पणखा लक्ष्मण के वचन का मर्म समझ नहीं पाती है।

आदिकवि यहाँ भी स्पष्ट कर देते हैं- शूर्पणखा कराला और निर्णतोदरी है:-

**इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी!**
**मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा॥**

**( 18.13 )**

लक्ष्मण के परिहास-पूर्ण वचन को नहीं समझ कर शूर्पणखा पुनः राम के पास जाकर साक्रोश बोली-

**इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।**
**वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहु मन्यसे॥15॥**
**अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्।**
**त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथा सुखम्॥16॥**

इस कुरूपा, ओछी, कराला, धँसे पेटवाली बूढ़ी भार्या सीता को लेकर तुम मुझे महत्त्व नहीं देते। अतः इस मानुषी को अभी तुम्हारे देखते-देखते खा जाऊँगा और फिर तुम्हारे साथ सौत के बिना सुखपूर्वक विचरण करूँगी। शूर्पणखा ने सीता के लिए विरूपा, असती, कराला, निर्णतोदरी और वृद्धा विशेषणों का व्यवहार ऊपर भी किया है।

शूर्पणखा ने महज धमकी ही नहीं दी, बल्कि मृगनयनी सीता को मारने के लिए अंगार के समान नेत्रवाली शूर्पणखा क्रोध में इस प्रकार झपटी, मानो कोई बड़ी उल्का रोहिणी नक्षत्र पर टूट पड़ी है:-

**इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा।**
**अभ्यगच्छत् सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥17॥**

इस प्रकार, शूर्पणखा सीता का भक्षण करने के लिए क्रोध में तेजी से झपटी। यदि राम उसे नहीं रोकते और लक्ष्मण को दण्डित करने के लिए नहीं कहते, तो सीता का संहार तो तत्काल हो जाता। राम-लक्ष्मण चाहते, तो शूर्पणखा का वध भी कर सकते थे; किन्तु वे स्त्रियों के वध के विरोध में थे। इसलिए विश्वामित्र द्वारा तारका का वध करने के आदेश के बावजूद वे पहले हिचकिचाये; दुबारे

आदेश के बाद गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च' (बा. का. 26.5) ही उन्होंने वध किया। शूर्पणखा ने जनस्थान खर-सहित सभी राक्षसों के संहार का वृत्तान्त सुनाते हुए यह बतलाया था कि एकमात्र मैं ही बची हूँ क्योंकि राम स्त्रीवध का कलंक नहीं लेना चाहते थे; अतः अपमानित करके ही छोड़ दिया-

**एका कथञ्चिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना।**
**स्त्रीवधं शङ्कमानेन रामेण विदितात्मना॥**

(3.34.12)

आत्मा-रक्षा या किसी के प्राण बचाने के लिए वध सदैव समुचित, समुपयुक्त माना गया है।

शूर्पणखा जब जानकी का वध करने के लिए तीव्रतापूर्वक झपटी, तब श्रीराम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि इस राक्षसी को विरूपित कर दो- कुरूपा, बदसूरत बना दो, ताकि यह भाग जाये।

**क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथञ्च न।**
**न कार्यः पश्च वैदेहीं कथञ्चित् सौम्य जीवतीम्॥19॥**
**इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम्।**
**राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि॥20॥**

*लक्ष्मण! क्रूर संस्कारहीनों के साथ परिहास नहीं करना चाहिए। देखो, किस कठिनाई के साथ सीता अभी बची हैं। यह कुरूपा, ओछी, अत्यन्त मतवाली, बड़े पेटवाली राक्षसी विरूपित करने लायक है।*

अग्रज राम का आदेश मिलने पर क्रुद्ध लक्ष्मण ने तलवार लेकर शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले:-

**इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।**
**उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः॥21॥**

नाक और कान कट जाने पर शूर्पणखा उच्च स्वर में क्रन्दन करते हुए जैसे आयी थी, उसी तरह वन में चली गयी:-

**निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च।**
**यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम्॥22॥**

नाम-कान कटने से विरूपिता शूर्पणखा राक्षसों से भरे जनस्थान में अपने भ्राता खर के पास गयी और जैसे आकाश से बिजली गिरती है, वैसे वह वहाँ पृथ्वी पर गिर पड़ी:-

**ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं**
**खरं जनस्थानगतं विरूपिता।**
**उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसं**
**पपात भूमौ गगनाद् यथाशनिः॥25॥**

खर की बहन शूर्पणखा ने, जो रक्त से नहा गयी थी और भय तथा मोह से मूर्च्छित हो गयी थी, वन में सीता और लक्ष्मण के साथ राम के आने और अपने कुरूप होने का सारा वृत्तान्त खर को सुनाया-

**ततः सभार्यं भयमोहमूर्च्छिता**
**सलक्ष्मणं राघवमागतं वनम्।**
**विरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिता**
**शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा॥26॥**

विलाप करने के बाद शूर्पणखा ने खर को यह सूचना दी:-

**तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।**
**पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥14॥**
**फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।**
**पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥15॥**
**गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ।**
**देवौ वा दानवावेतौ न तर्कयितुमुत्सहे॥16॥**
**तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।**
**दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा॥17॥**
**ताभ्यामुभाभ्यां सम्भूय प्रमदामधिकृत्य ताम्।**
**इमामवस्थां नीताहं यथानाथासती तथा॥18॥**
**तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम्।**
**सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि॥19॥**

**एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत्।**
**तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे॥20॥**

(अरण्यकाण्ड, 19 वाँ सर्ग श्लोक 14 से 20 तक)

अर्थात् वे दोनों सुन्दर, सुकुमार युवा बलशाली हैं। उनकी आँखें कमल के समान हैं तथा वे काले हिरण की छाल पहने हुए हैं। वे दोनों केवल फल-मूल खाते हैं, संयमी हैं ब्रह्मचारी तपस्वी हैं। वे दोनों दशरथ के पुत्र हैं तथा उनके नाम राम एवं लक्ष्मण हैं। वे गन्धर्वराज की तरह दीखते हैं और ऐसा लगता है, जैसे चँवर डुलाये जाते हुए राजा हों। वे देवता हैं या दानव मैं बता नहीं सकती। उन दोनों के बीच मैंने पतली कमर वाली एक युवती देखी जो रूपवती है तथा सभी आभूषणों से लदी है। उसी युवती के कारण उन दोनों ने मेरी यह हाल कर दी जैसे कि मैं असहाय कुलटा होउँ। मैं उस कुटिल आचारवाली स्त्री तथा युद्ध में मारे गये उन दोनों का फेन सहित रक्त पीना चाहती हूँ। यही मेरी पहली इच्छा है कि युद्ध में उन दोनों का रक्त मैं पी सकूँ। मेरी यह इच्छा तुम्हारे द्वारा पूरी की जानी चाहिए।

शूर्पणखा की इच्छा, पिपासा क्या है? वह राम, लक्ष्मण और सीता के वध के बाद उनका फेन-सहित रक्त पीना चाहती है। 'सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरम्'। कितनी दारुण अभिलाषा है यह! जिघांसा से भी बढ़कर विकराल!

क्या राम-रावण युद्ध का सूत्रपात शूर्पणखा कर रही है? रावण द्वारा अपने पति के वध के प्रतिशोध में? किसी वृद्धा के भी मन में किसी का अपूर्व रूप देखकर वासना जग जा सकती है; किन्तु ठुकराये जाने पर भार्या के वध को प्रवृत्त होना क्या किसी दूरगामी षड्यन्त्र का सूचक था?

शूर्पणखा के षड्यन्त्र का जो भी बीज हो, खर ने घायल बहन को लहू-लुहान देखकर चौदह पराक्रमी राक्षसों को राम-लक्ष्मण और सीता को मारकर लाने के लिए भेजा, ताकि शूर्पणखा उनका फेनयुक्त रक्त पी सके। पहले, खर द्वारा भेजे गये उन चौदह राक्षसों का वध राम द्वारा हुआ। तत्पश्चात् खर-दूषण ने जनस्थान से चौदह हजार राक्षसों के साथ प्रस्थान किया। किन्तु अकेले राम ने उन 14000 सैनिकों का संहार किया। तदनन्तर दूषण और त्रिशिरा का भी वध हुआ और अन्ततोगत्वा खर भी रण में राम के हाथों मारा गया।

जब शूर्पणखा ने यह सम्पूर्ण संहार देखा, तब भय और शोक से घोर क्रन्दन करने लगी और परम उद्विग्न होकर रावण द्वारा सुरक्षित लंका पहुँची। वहाँ उसने रावण को फटकारते हुए राजा के कर्तव्याकर्तव्य पर लम्बा उपदेश दे डाला। साथ में, यह भी कह डाला कि तुम दूसरों का अनादर करनेवाले, विषयों में सदैव आसक्त रहनेवाले और देश-काल के विभाग को यथोचित नहीं समझने वाले तथा गुण और दोष के निश्चय में अपनी बुद्धि को कभी नहीं लगाने वाले हो; अतः तुम्हारा राज्य शीघ्र ही चला जायेगा और शीघ्र ही भारी विपत्ति में पड़ जाओगे:-

**परावमन्ता विषयेषु सङ्गवान्**
**न देशकालप्रविभागतत्त्ववित्।**
**अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये**
**विपन्नराज्यो न चिराद् विपत्स्यसे॥**

(3.33.23)

रावण के पूछने पर शूर्पणखा ने राम के पराक्रम का विस्तारपूर्वक वर्णन किया और यह भी बतलाया कि कैसे एक ओर चौदह हजार-घोर पराक्रमी राक्षस और खर-दूषण थे तथा दूसरी ओर राम अकेले और पैदल थे; फिर भी उन्होंने डेढ़ मुहूर्त

(तीन घड़ी) में ही सबका संहार कर दिया और ऋषियों को अभय प्रदान करते हुए समस्त दण्डकारण्य को राक्षसों के उत्पातों से रहित कर दिया–

**रक्षसां भीमवीर्याणां सहस्राणि चतुर्दश।**
**निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना॥**
**अर्धाधिकमुहूर्तेन खरश्च सदूषणः।**
**ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः॥**

(3.34.9–10)

किन्तु शूर्पणखा ने सीता के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए रावण के संहार के अन्तिम उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अपहरण करने का विनाशकारी परामर्श दे डाला–

**सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा।**
**नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी॥**
**तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले॥**

**( 3.34.18 )**

*सीता का सौन्दर्य ऐसा है कि वैसी रूपवती स्त्री न तो यक्षों में, और न किंनरों में है और इस भूतल पर तो वैसी सुन्दरी नारी मैंने कभी देखी नहीं।*

रावण को प्रसन्न करने के लिए शूर्पणखा एक असत्य–वचन का आश्रय लेती है:–

**भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम्।**
**विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज॥21॥**

रावण! उस सुन्दरी को तुम्हारी पत्नी बनाने के लिए लाने के मेरे प्रयत्न के क्रम में क्रूर लक्ष्मण ने मुझे विरूपित कर दिया– नाक–कान काट डाला।

शूर्पणखा ने यह झूठ रावण को खुश करने के लिए कहा। यदि इस वचन को सत्य माना जाये तो इसका निहितार्थ होगा कि शूर्पणखा राम–लक्ष्मण से प्रणय–याचना कर पंचवटी में रहना चाहती थी और मौका पाकर सीता का अपहरण कर ले जाना चाहती थी। किन्तु यह सम्भावना क्षीण है। यह शूर्पणखा का मिथ्या वचन है। एक घोर वृद्धा अपने भाई से कैसे कहती कि राम–लक्ष्मण की पत्नी बनने के प्रयास में उसकी यह दुर्गति हुई।

अन्त में, शूर्पणखा ने रावण के विनाश का जाल यह कहकर फेंक दिया:–

**विज्ञायैषामशक्तिं च क्रियतां च महाबल।**
**सीता तवानवद्याङ्गी भार्यात्वे राक्षसेश्वर॥**

**( 3.34.25 )**

महाबली राक्षसेश्वर! तुम राम के साथ अपने बलाबल का विचार कर सुन्दरी सीता को अपनी भार्या बनाओ।

**विज्ञायेहात्मशक्तिं च ह्रियतामबला बलात्।**
**सीता सर्वानवद्याङ्गी भार्यार्थे राक्षसेश्वर॥**

इसमें सीता को बलपूर्वक हरने का सीधा परामर्श है। 'क्रियतां च महाबल' के स्थान पर 'ह्रियतामबला बलात्' यानी अबला (स्त्री सीता) को बलपूर्वक हर कर लाओ। कुछ और परिवर्तन हैं– 'एषामशक्तिं' के स्थान पर 'इहात्मशक्तिं', 'तव' के स्थान पर 'सर्व' तथा 'भार्यात्वे' के स्थान पर 'भार्यार्थे'।

बड़ौदा संस्करण ने एक पाठ **B**4 (बंगाल का पाठ) से एक श्लोक समापन में दिखाया है, जो बहुत ही उपयुक्त है:–

**तथा हि तद्राक्षसवंशनाशनं**
**तया प्रयुक्तं वचनं स रावणः।**
**मुदा च संहृत्य नरेन्द्रतापन–**
**श्चकार बुद्धिं स्वकुलस्य नाशिनीम्॥**

रावण को वह राक्षस–वंश का नाश करने वाला वचन बोली। अपने कुल को नाश करनेवाली बुद्धि को रावण ने अंगीकार किया।

यहाँ वाल्मीकि लिखते हैं कि राक्षसों के वंश

का नाश करने वाली सलाह शूर्पणखा ने दी और यही बात असंख्य राक्षसों का लंकायुद्ध में वध हो जाने के बाद उनकी विधवाएँ विलाप कर शूर्पणखा को कोसते हुए कहती हैं।

**विधवा हतपुत्राश्च क्रोशन्त्यो हतबान्धवाः।**
**राक्षस्यः सह संगम्य दुःखार्ताः पर्यदेवन्॥**
**कथं शूर्पणखा वृद्धा कराला निर्णतोदरी।**
**आससाद वने रामं कन्दर्पसमरूपिणम्॥**

(युद्ध. **94. 5-6**)

वे अनाथ राक्षसियाँ, जिनके पति, पुत्र और भाई-बन्धु मारे गये थे, झुण्ड-की-झुण्ड एकत्र होकर दुःख से आर्त होकर विलाप करने लगीं- 'हाय! जो शूर्पणखा बुढ़िया है, देखने में कराल, भयंकारी है और जिसका पेट धँसा हुआ है, वह वन में कैसे कामदेव-समान सुन्दर राम के पास जाने का साहस कर सकी?'

राक्षसियों ने आगे उपालम्भ दिया- 'जो राम सुकुमार किन्तु महापराक्रमी हैं और जो सभी प्राणियों के हित में लगे रहते हैं, उन्हें देखकर वह बदसूरत (हीनरूपा) कैसे काम-भाव से आसक्त हो गयी है। अतः उसे राक्षस-पत्नियों ने लोकवध्या कह डाला यानी इसको मार डालने का अधिकार सबको है।

**सुकुमारं महासत्त्वं सर्वभूतहिते रतम्।**
**तं दृष्ट्वा लोकवध्या सा हीनरूपा प्रकामिता॥7॥**

राक्षसियों ने विलाप करते हुए कहा कि कहाँ एक ओर राम गुणवान् महाबलवान्, सुन्दर और दूसरी ओर शूर्पणखा सभी गुणों से हीन और देखने में एकदम बदसूरत; फिर उसने कैसे राम की कामना की?

**कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम्।**
**सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी॥8॥**

राक्षसियों को इस बात का आश्चर्य हो रहा है; किन्तु शूर्पणखा को तरुणी और सुन्दरी मानने की भूल करनेवाले पूर्वाग्रहियों को यह बात समझ में नहीं आती।

राक्षसियों ने चीत्कार करते हुए आगे कहा कि यहाँ के निवासियों के दुर्भाग्य के कारण ही इस कुरूपा ने, जिसके अंगों में झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, जिसके सिर के बाल सफेद हो गये हैं, खर-दूषण सहित राक्षसों के विनाश के लिए राम के साथ अकरणीय, उपहासनीय और सर्वलोक-निन्दनीय धृष्टता की:-

**जनस्यास्याल्पभाग्यत्वाद् बलिनी श्वेतमूर्धजा।**
**अकार्यमपहास्यं च सर्वलोकविगर्हितम्॥9॥**
**राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च।**
**चकाराप्रतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम्॥10॥**

राक्षसियों का यही निष्कर्ष था कि उसके कारण ही दशानन रावण ने यह बड़ा बैर कर लिया और अपने तथा अपने कुल के विनाश के लिए वह सीताजी को हर लाया।

**तन्निमित्तमिदं वैरं रावणेन कृतं महत्।**
**वधाय सीता साऽऽनीता दशग्रीवेण रक्षसा॥10॥**

इस प्रकार हम पाते हैं कि शूर्पणखा जब राम से मिलने गयी थी, तब वह वृद्धा और कुरूपा थी। वाल्मीकि ने उस समय की शूर्पणखा के लिए निम्नलिखित विशेषणों का व्यवहार किया है:-

(क) दुर्मुखी (ख) महोदरी (ग) विरूपाक्षी (घ) ताम्रमूर्धजा (ङ) विरूपा (च) भैरवस्वना (छ) दारुणा वृद्धा (ज) वामभाषिणी (झ) सुदुर्वृत्ता (ञ) अप्रियदर्शना (ट) असती (ठ) अतिमत्ता (अरण्यकाण्ड सर्ग- 17, 18)

इसके अतिरिक्त सूप-जैसे विशाल एवं विकराल नख उसके थे; अतः उसका नाम शूर्पणखा था-

**'शूप-सदृशाः नखा यस्याः सा शूर्पणखा'।**

अब कोई कल्पना करे कि उसके सामने दारुण वृद्धा, कराला, वलिनी (झुर्रियों वाली), बड़े पेट वाली बदसूरत औरत आकर पत्नी बनने की जिद करे, तो उपहास के अलावे और क्या विकल्प हो सकता है। शूर्पणखा जब राम के सामने प्रस्तुत हुई थी, तब उसकी शारीरिक स्थिति ऐसी ही थी। वह कामरूपिणी रही होगी यानी इच्छानुसार रूप बदल सकती थी, किन्तु जब वह राम के पास पंचवटी में गयी थी, तो वह बुढ़िया ही थी और उसी रूप में वह प्रणय-याचना कर रही थी।

शूर्पणखा की वृद्धावस्था को मेरे कुछ विद्वान् मित्र भी मानने को तैयार नहीं थे। अरण्यकाण्ड में वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत राम और शूर्पणखा के रूपों में आकाश-पाताल का अन्तर वर्णित करने के बावजूद। किन्तु जब उन्हें युद्धकाण्ड में राक्षसियों द्वारा विलाप करने के क्रम में शूर्पणखा का वर्णन सुनाया, तो उन्हें भी यह यथार्थ स्वीकार करना पड़ा। राक्षसियों ने शूर्पणखा के लिए जिन विशेषणों का उपयोग किया है, वे हैं- (क) वृद्धा (ख) कराला (ग) निर्णतोदरी (घ) लोकवध्या (ङ) हीनरूपा (च) सर्वगुणैर्हीना (छ) दुर्मुखी (ज) वलिनी (झ) श्वेतमूर्धजा (ञ) अप्रतिरूपा

अत: यह निश्चित है कि शूर्पणखा बदसूरत बुढ़िया थी और वह उसी कुवेष में पंचवटी गयी थी; अत: राम ने मजाक में लक्ष्मण के पास उन्हें 'अकृतदार' कहकर भेज दिया था और राम ने इसे उपहास कहा भी है और सुदूर लंका की राक्षसियों को भी 'उपहास्य' लगा था। अत: राम द्वारा असत्य-सम्भाषण का प्रश्न ही नहीं है।

जहाँ तक शूर्पणखा के नाक-कान काटे जाने का प्रश्न है; यह दण्ड उसे तब मिला जब उसने सीता को मार डालने का प्रयत्न किया। उसे तो मृत्युदण्ड मिलना चाहिए था; किन्तु राम स्त्री का वध करने के पक्षधर नहीं थे; अत: लक्ष्मण को मात्र विरूपित करने का आदेश दिया, ताकि वह दूर भाग जाये और सीता के प्राण हरण नहीं हों। अत: यह भी न्यायसंगत दण्ड था।

अन्तिम प्रश्न उठता है- शूर्पणखा पंचवटी में राम के पास क्यों गयी? यदि वह वहाँ नहीं जाती, तो राम चौदह वर्ष का बनवास वहीं सुखपूर्वक व्यतीत कर अयोध्या लौट जाते और राम-रावण युद्ध नहीं होता। रावण का वध भी नहीं होता। क्या वृद्धा शूर्पणखा ने रावण से प्रतिशोध लेने के लिए पंचवटी में प्रणय-याचना का नाटक रचकर राम-रावण के बीच वैर स्थापित किया, ताकि रावण ने शूर्पणखा के पति को जो वध उसकी जवानी में किया था, उस वैधव्य का बदला वह ले सके। वह तो अबला थी, विधवा थी, विवाह के तुरत ही बाद पति भी मारा गया था; अत: कोई पुत्र भी नहीं था, जो रावण से प्रतिशोध ले सके। उसके पति का राज्य भी रावण ने हड़प लिया था और खोरिश के रूप में खर-दूषण के पास दूर दण्डकारण्य में भेज दिया था। वहीं एक अबला विधवा पति-वियोग में सदैव दण्डकारण्य में प्रतिशोध की ज्वाला में जीती रही हो और अन्ततोगत्वा राम की पंचवटी में जाकर रावण के विनाश का बीज वपन कर चली आयी हो; वाल्मीकि इस विषय पर मुखर नहीं है; किन्तु कभी-कभी मौन भी सत्य का संकेत करने में सहायक होता है। शूर्पणखा-प्रकरण का जो यथार्थ है, उसे उपर्युक्त विवेचन में प्रतिबिम्बित किया गया है।

***

अध्यात्म-रामायण से

# राम-कथा

-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की लेखनी से
महावीर मन्दिर द्वारा प्रकाशित

**( यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक ( 80 से 85 वर्ष की उम्र ) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं। )**

## किष्किन्धाकाण्ड

### राम और सुग्रीवकी मित्रता

लक्ष्मणके साथ चलते हुए राम पम्पा सरोवर के पास जल पीकर ऋष्यमूककी तलहटीमें जा पहुंचे। उस पर्वतके शिखरपर अपने माल्लियों के साथ बैठे हुए सुग्रीवने उन्हें उधर जाते देखकर हनुमानसे कहा कि तुम ब्रह्मचारीका वेश बनाकर यह भेद लेते आओ कि कहीं बाली के भेजे हुए तो नहीं चले आ रहे हैं। यदि कुछ दाल में काला हो तो उँगली से संकेत कर देना, हम लोग यहाँ से नौ दो ग्यारह हो जायेंगे।

हनुमान् ने रामके पास पहुँचकर जब उनका परिचय पूछा तब उन्होंने अबतककी अपनी सारी आप-बीती कह सुनाई। अपना परिचय देते हुए हनुमान् ने कहा कि 'इस पर्वतके शिखरपर अपने चार मन्त्रियों के साथ वानरराज सुग्रीव रहते हैं जिनकी पत्नीको छीनकर उनके बड़े भाई बालीने उन्हें घरसे निकाल दिया है। मैं उन्हींका मन्त्री और वायुका पुत्र हूं। मेरा माता अञ्जनी हैं और मैं हनुमान कहलाता हूं। आप चलकर महाराज सुग्रीवसे मित्रता कर लीजिए।' रामकी स्वीकृति पाकर हनुमानने राम और लक्ष्मणको अपने कंधेपर उठा चढ़ाया और सुग्रीबके पास ले जा पहुंचाया जहाँ लक्ष्मणने सीताके हरे जानेतकका सारा वृत्तान्त सुग्रीवको कह सुनाया।

सुग्रीवने रामको वचन दिया कि मैं सीताकी खोज और शत्रुका वध करने में आपकी पूरी सहायता करूँगा। एक दिन मैंने देखा भी था कि कोई राक्षस एक सुन्दरीको आकाश-मार्गसे लिए चला जा रहा है जो 'राम राम' चिल्ला रही थी। हमें देखकर उसने

एक वस्त्रमें अपने कुछ आभूषण लपेट कर फेंक गिराए थे। जब उसने रामको वे आभूषण ला दिखाए तब उन्हें पहचान कर और छातीसे लगाकर 'हा सीते, हा सीते' कहकर राम रोने लगे। लक्ष्मणने उन्हें बहुत ढाढ़स बँधाया। हनुमान्‌ने झट अग्नि जलाकर राम और सुग्रीवकी मित्रता पक्की करा दी। अपनी कथा सुनाते हुए सुग्रीव ने रामसे कहा कि एक बार मय दानवके पुत्र मायावीने किष्किन्धामें बालीको आ ललकारा। बालीने बाहर निकलकर उसे ऐसा घूसा जमाया कि वह व्याकुल होकर एक गुफाकी ओर भाग चला। मैंने और बालीने जब उसका पीछा किया तब बालीने मुझसे कहा कि तुम बाहर खड़े रहो, मैं गुफामें चला जाता हूँ। एक मास बीतनेपर गुफा के द्वारसे बहुत-सा रक्त निकलता देखकर मैंने समझा कि बाली मारा गया। एक शिलासे उस गुफाका द्वार बन्द करके जब मैं लौटा तब मुझे सबने राजा बना दिया। कुछ ही दिनों पश्चात् बालीने आकर जब मुझे राजा बना देखा तो ऐसा घूसा मुझे मारा कि मैं नगर छोड़कर भाग खड़ा हुआ और इस ऋष्यमूक पर्वतपर आकर रहने लगा क्योंकि मतंग ऋषिके शापके कारण वह यहाँ नहीं आ पाता। उसने मेरी भार्या भी छीन ली है।

रामने उसे सान्त्वना दी- 'घबराओ मत, मैं तुम्हारे शत्रुको मारकर तुम्हारी पत्नी तुम्हें दिलवा दूंगा।' किन्तु सुग्रीवने बताया कि बाली बड़ा बलवान् है। एक बार जब दुन्दुभि राक्षसने भैंसा बनकर किष्किन्धामें आकर बालीको ललकारा तब बालीने उसे पटककर, उसका सिर मरोड़कर उसे ऐसा उछाल फेंका कि वह मतंगके आश्रमके पास जा गिरा। इसपर मतंग ऋषिने उसे शाप दिया कि जहाँ तू इस पर्वतपर आया कि तेरा सिर फट गिरेगा। आप चलकर उस दुन्दुभि दैत्यका सिर तो देख लीजिए। यदि आप उसका मस्तक उठाकर फेंक सकें तो आप अवश्य बालीका वध कर सकेंगे। रामने झट अपने पैरके अँगूठेसे उसे दस योजन (128 किलोमीटर) दूर ठेल फेका। तब सुग्रीवने उन्हें ताड़के सात वृक्ष दिखाकर कहा कि बाली इनमेंसे एक-एकको हिला-हिलाकर उनके सब पत्ते झाड़ गिराता था। यदि आप एक बाणसे इन्हें छेद सके तो आप अवश्य बालीको मार सकेंगे। रामने झट एक बाणसे उन सातों ताड़के वृक्षोंको बेध दिया। यह देखकर तो सुग्रोव की बाछें खिल गई और वह बोला कि अब तो मुझे बालीको जीतने या स्त्रीका सुख प्राप्त करनेकी इच्छा भी नहीं रह गई। अब तो मैं केवल आपकी भक्ति ही चाहता हूँ।

**बालीका वध**

रामने सुग्रीवको प्रोत्साहन दिया कि तुम तत्काल बालीको ललकारो, मैं अभी उसे एक बाणसे मारे डालता हूँ। जब सुग्रीव के ललकारनेपर बाली आया तो दोनोंमें मुक्का-मुक्की होने लगी। वे दोनों ऐसे मिलते-जुलते थे कि राम यही नहीं समझ पाए कि इनमें बाली कौन है। इतने में मुखसे रक्त उगलता हुआ सुग्रीव भागा रामके पास आकर बोला कि मारना ही है तो बालीके बदले आप ही मुझे मार डालिए। रामने कहा कि तुम दोनों का रूप एक-सा देखकर मैं बाण ही नहीं चला पाया। अब मैं पहचानके लिये एक माला दिए देता हूँ। रामके कहनेसे लक्ष्मणने सुग्रीव के गले में माला डालकर उसे फिर बालीसे लड़ने के लिये भेज दिया। इस बार जब सुग्रीवकी ललकार सुनकर बाली चलनेको हुआ तब उसकी पत्नी ताराने उसे समझाया कि इस समय आपका जाना ठीक नहीं है। जान पड़ता है इस बार

उसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है । ताराने उसे यह भी समझाया कि सुग्रीवने रामसे मित्रता कर ली है और उन्होंने आपको मारकर उसे राजा बनानेकी प्रतिज्ञा भी कर ली है इसलिये आप सुग्रीवको बुलाकर युवराज बना दीजिए और रामकी शरणमें चले जाइए। बालीने ताराको समझाते हए कहा कि यदि लक्ष्मणके साथ राम आए होंगे तो उनसे मेरा प्रेम हो जायगा। मैंने पहलेसे ही यह सुन रक्खा है। मैं उन्हें प्रणाम करके अपने घर लिवाता लाऊँगा। इस प्रकार समझाकर वह सुग्रीवसे लड़नेके लिये चल पड़ा। उन्हें लड़ते देख कर रामने वृक्षकी ओटसे ऐसा बाण खींच मारा कि बाली धरतीपर आ गिरा। इतने में राम भी उसके सामने आ खड़े हुए। उन्हें देखकर बाली कुछ तिरस्कारपूर्वक मन्द स्वरमें बोला- 'बताइए, मैंने आपका क्या बिगाड़ा था जो आपने मुझे इस प्रकार मारा? राजनीति न जाननेसे ही आपने निन्दनीय ढंगसे वृक्षकी ओटमें छिपकर मुझे बाण मारा है। यदि आप क्षत्रिय बनते हैं तो आपको सामने आकर युद्ध करना चाहिए था। सग्रीवने आपके साथ ऐसा कौन-सा बड़ा उपकार कर डाला था और मैंने क्या अपकार किया था? यदि आपको अपनी भार्या प्राप्त करनी थी तो मुझसे कहते, में आधे मुहूर्त में ही कुलसहित रावणको, सीताको और लंकाको यहाँ उठाए लिए चला आता। आप तो बड़े धर्मात्मा कहे जाते हैं। व्याधके समान एक वानर मारकर भला आपको कौन-सा बड़ा पुण्य मिल गया?वानरका मांस तो वैसे भी अभक्ष्य है। फिर मुझे मारकर आपको मिलेगा भी क्या?' रामने कहा- 'बहुत राजनीति मत छाँटो। देखो, पुत्री, बहिन, छोटे भाईकी पत्नी और पुत्रवधूको जो दुष्ट बुद्धिसे देखता है उसे मार ही डालना चाहिए।'

यह वचन सुनकर बाली उन्हें प्रणाम करके कहने लगा- 'आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया। अब मैं आपके परम धामको चला जा रहा हूँ। आप अपने कर-कमलोंसे मेरे हृदयका स्पर्श करके यह बाण निकाल दीजिए।' बाण निकालते ही उसने इन्द्र-रूप होकर परम पद प्राप्त कर लिया।

बालीका वध सुनकर तारा छाती पीट-पीटकर रोती हुई दौड़ी वहाँ जा पहँची जहाँ बालीका निर्जीव शरीर पड़ा था। उसने जाते ही रामसे कहा कि अब मुझे भी उसी बाणसे मार डालिए, जिससे आपने बालीको मारा है। रामने ताराको ऐसा तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर शान्त किया कि वह तत्काल जीवन्मुक्त हो गई। इतना ही नहीं, सुग्रीवको भी वह सुनकर पूर्ण ज्ञान हो गया। रामकी आज्ञासे अंगदने बालीका अन्तिम संस्कार किया और तब किष्किन्धामें सुग्रीवको राजपदपर अभिषिक्त करा दिया गया। उसके पश्चात् राम और लक्ष्मण प्रवर्षण पर्वतपर चले गए। वहाँ स्फटिक मणिकी ऐसी गुफामें जाकर वे रहने लगे जहाँ सब प्रकारकी सुविधा थी और सब ऋतुओंमें रहनेका सुपास था।

प्रवर्षण पर्वतपर रहते हुए एक दिन लक्ष्मणने रामसे कहा कि योगीजन जिस क्रियासे आपकी आराधना किया करते हैं मैं उसे सुनना चाहता हूँ। रामने विस्तारसे सारी पूजन-पद्धति लक्ष्मणको समझा बताई और कहा कि जो इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करता है उसे इहलोक और परलोक दोनोंकी सिद्धि हो जाती है।

**सीताकी खोज में वानर भेजे गए**

इधर हनुमान् ने सुग्रीवसे आकर कहा कि रामने तो आपका इतना बड़ा उपकार कर डाला किन्तु आप कृतघ्नके समान वह सब भूले बैठे हैं।

सीताकी खोजके लिये प्रतिज्ञा करके भी आपने अभीतक कुछ नहीं किया। यह सुनकर तो सुग्रीवके रोंगटे खड़े हो गए। उसने तत्काल सब दिशाओं में दस सहस्र वानर भेज दिए और कह दिया कि जो एक पक्षके भीतर यहाँ लौटकर नहीं आता उसे बिना मारे नहीं छोड़ सकता। इस प्रकार मुख्य-मुख्य वानर-दूत राम कार्यके लिये चारों ओर भेज दिए गए।

अवर्षण पर्वतपर बैठे हुए सीताके विरह में व्याकुल रामने लक्ष्मणसे कहा- देखो, सुग्रीव कैसा निर्दयी है कि सीताकी खोज के लिये उसने अभीतक कुछ नहीं किया। जान पड़ता है जिस प्रकार बाली मेरे हाथ से मारा गया वैसे ही सुग्रीव भी पाए जानेवाला है।' रामको कुद्ध देखकर लक्ष्मणने उनसे कहा कि आप कहिए ही में अभी ही सुग्रीवको मारकर लौट आता हूँ। लक्ष्मणको तैयार होकर जाते देखकर रामने कहा- 'देखो, सुग्रीव मेरा प्रिय मित्र है। उसे मारना मत। उसे केवल डराना-धमकाना और उसका उत्तर ले कर चले आना। फिर जो उचित होगा मैं स्वयं कर लूंगा।'

लक्ष्मणने किष्किन्धापुरी में पहुँचकर जो उग्र रूप धारण किया उसे देखकर और उनके धनुषकी टंकार सुनकर तो सब बानर भयभीत हो उठे। उसी समय अंगद ने आकर उन्हें प्रणाम किया और उनके आने का समाचार सुग्रीवको जा सुनाया। यह सुनकर तो सुग्रीवके देवता कूच कर गए और उसने हनुमान से कहा कि तुम लक्ष्मणको शान्त करके लेते आओ। फिर तारा भी कहा कि तुम अपनी मधुर वाणीसे लक्ष्मणको शान्त करके यहाँ लिवाती लाओ। अंगद और ताराने किसी-किसी प्रकार लक्ष्मणको शान्त किया और बताया कि बहुत-से वानर पहले ही विभिन्न देशों को भेजे जा चुके हैं। आइए, अन्त:पुरमें पधारिए। उस समय सुग्रीव अपनी पत्नी रुमाको गले लगाए पलंगपर लिपटा पड़ा था। लक्ष्मणको देखते ही सुग्रीव भयभीत होकर उछलकर उठ खड़ा हुआ। उसे उस दशामें देखकर लक्ष्मणने कोधित होकर कहा- अरे दुश्शील, तू रामको भूल गया? जिस बाणसे बाली मारा गया था वह आज तेरी भी प्रतीक्षा कर रहा है। जान पड़ता है मेरे हाथ से मरकर भी बालीके मार्ग से ही जानेपर तुला बैठा है।

**बाली येन हतो वीरः स बाणोऽद्य प्रतीक्षते।**
**त्वमेव बालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः॥**

यह सुनकर हनुमानने लक्ष्मणसे कहा कि आप इनके लिये ऐसे वचन क्यों कह रहे हैं। ये तो रामके भक्त है। ये भला उन्हें कैसे भूल सकते हैं? इन्होंने अनगिनत बानर सब दिशाओं में भेज दिए हैं और अब भी करोड़ों वानर चलते ही चले जा रहे हैं। ये सभी मिलकर रामका ही तो कार्य सिद्ध करेंगे यह सुनकर तो लक्ष्मण लज्जित हो गए। तब सुग्रीवने लक्ष्मणकी पूजा की और कहा कि मैं अपनी वानर-सेनाके साथ सदा उनका सहायक बना रहूँगा। लक्ष्मणने भी अपने कठोर वचन के लिये क्षमा माँगी और तब सुग्रीव भी लक्ष्मण के साथ रथपर चढ़कर राम के पास चल दिए।

रामको दूरसे ही देखकर सुग्रीव और लक्ष्मण रथपर से उतर पड़े और आकर उनके चरणों में गिर पड़े। रामने सुग्रीवको गलेसे उठा लगाया और अपने पास बुला बैठाया। सुग्रीवने उन्हें बताया कि आपकी सेवाके लिये वानरोंकी महान् सेना अभी चली ही आ रही है। रामने सुग्रीवसे कहा कि तुम इन्हें जानकीकी खोजके लिये नियुक्त कर दी । तदनुसार तुरन्त सब दिशाओं में अनेक वानर भेजकर सुग्रीवने अंगद, जाम्बवान, हनुमान, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और

द्विविद आदिसे कहा कि तुम लोग दक्षिण जाकर जानकीकी खोज करो और एक मासके भीतर ही लौट आओ। यदि सीताको बिना देखे एक माससे एक दिन भी अधिक हो जायगा तो मेरे हाथसे तुम्हें प्राणदण्ड भोगना पड़ेगा।

उस समय हनुमान् को जाते देखकर रामने कहा कि तुम मेरी यह अंगूठी लेते जाओ जिसपर मेरा नाम खुदा हुआ है। इसे अपने परिचयके लिये तुम सीताको दे देना। यह कार्य तुम्हीं कर सकते हो, क्योंकि मैं तुम्हारा बुद्धि-बल जानता हूँ। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।

**स्वयंप्रभाकी गुफा**

सीताको खोजमें जाते हुए उन्हें जहाँ कहीं कोई राक्षस मिलता उसे ही रावण समझकर वे मार डालते। इस प्रकार घूमते-घूमते उनके कठ, ओठ और ताल सूख गए। तब उन्होंने देखा कि लता आदिसे ढकी हुई एक विशाल गुफा है जिसमेंसे भीगे पंखोंवाले बहुत से पानी निकले चले आ रहे हैं। यह देखकर वे उस अंधेरी गुफामें दूरतक घसे चले गए। वहाँ वे देखते क्या हैं कि एक दिव्य भवनमें एक रमणी सुवर्णके सिंहासनपर पधरी बैठी हुई है। उसके पूछने पर हनुमानने जानकीके हरणतककी सारी कथा उसे कह सुनाई। उस योगिनी (स्वयंप्रभा) ने उनसे कहा कि तुम लोग पहले फल-मूल खाकर जलपान कर लो तब मैं तुम्हें अपनी कथा सुनाऊँगी। उनके जलपान कर चुकनेपर उस योगिनीने हनुमानको बताया कि विश्वकर्माको पुत्री हेमाने शिवजीको प्रसन्न करके उनसे यह विशाल दिव्य नगर प्राप्त कर लिया था। मैं दिव्य नामक गन्धर्वकी पुत्री स्वयंप्रभा उसीकी सखी हूँ। मैं मोक्षकी इच्छासे विष्णु की उपासना कर रही हूँ। ब्रह्मलोक जाते समय हेमाने कहा था कि जब त्रेतायुग में रामके दूत उनकी भार्याको ढूंढते हुए इस गुफामें आवेंगे तब तू रामके पास जाकर विष्णुलोक प्राप्त कर लेना। अत:, मैं तो अब रामके दर्शन के लिये चली जा रही हूँ। तुम लोग अपनी-अपनी आँखें मूंद लो तो गुफाके बाहर पहुँच जाओगे।

आँखें मूंदते ही वे सब गुफाके बाहर वनमें जा पहुँचे । वह योगिनी स्वयंप्रभा भी तत्काल रामके पास पहुँचकर सुग्रीव तथा लक्ष्मण-सहित उनका दर्शन करके तृप्त हो गई। उसकी स्तुति सुनकर रामने उससे पूछा कि तेरी क्या इच्छा है। स्वयंप्रभाने कहा- 'बस यही इच्छा है कि मैं जहाँ कहीं भी जन्म लूँ वहाँ आपमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे, सदा आपके भक्तोंसे मेरा संग हो, मैं सदा राम-राम रटा करूँ और सदा सीतालक्ष्मणके साथ आपकी मूर्त्तिका ध्यान किया करती रहूँ । रामने कहा- 'ठीक है, ऐसा ही होगा। अब तू बदरिकाश्रम में चली जा, जहाँ शरीर छोड़कर तू परम धाम पहुँच जायगी। यह सुनकर स्वयंप्रभा बदरिकाश्रमको चली गई जहाँ बेर ही बेरके पेड़ लगे हुए थे। वहाँ रामका स्मरण करती हुई वह अन्तमें परम धाम पहुँच गई।

गुफाके पासवाले घने जंगल में पहुँचनेपर अंगदने कहा कि इस गुफामें घूमते-घूमते एक मास निकल गया किन्तु सीताका कोई समाचार नहीं मिल पाया। अब किष्किन्धा लौटनेपर सुग्रीव हमें मारे बिना छोड़ेगा नहीं और कमसे कम मुझे तो वह मार ही डालेगा इसलिये मैं तो वहाँ जानेवाला हूँ नहीं। मैं तो यहीं अपने जीवनका अन्त किए डालता हूँ। यह सुनकर साथी वानरोंने कहा कि आप शोक क्यों करते हैं? चलिए, हम सब भी इसी गुफा में चलकर जा रहते हैं। यहाँ किसी बातकी कमी तो है नहीं। हनमानने अंगदको समझाया कि राम साक्षात् नारायण

हैं, सीता उनकी माया हैं और लक्ष्मण शेषजी हैं। हम सब भी उनके पार्षद हैं। अंगदको ढाढस बंधाकर वे सब दक्षिण समुद्रके तटपर महेन्द्र पर्वतकी तलहटीमें जा पहुँचे। वहाँ लहराते हुए अपार समुद्रको देखकर तो उनके प्राण सूख गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि सुग्रीवके हाथसे मरने की अपेक्षा यहाँ प्रायोपवेशन (अन्न-जल छोड़कर प्राण देने) में ही हमारा अधिक कल्याण है। यह निश्चय करके वे कुशा बिछा-बिछाकर प्राण देने के लिये बैठ गए।

**सम्पातिसे भेंट**

उसी समय महेन्द्र पर्वतकी कन्दरासे बाहर झाँककर एक बड़ा-सा गृध्र कहने लगा- 'वाह! आज तो एक साथ बहुत-सा भोजन प्राप्त हो गया है। अब तो मैं इन्हें नित्यप्रति एक-एक करके खाता रहूँगा।' यह सनकर सब वानर भयभीत होकर कहने लगे कि हम रामका तो कुछ भी काम कर नहीं पाए और इधर यह हम सबको मार खा जाने के लिये तैयार बैठा है। हमसे तो अधिक धर्मात्मा जटायु ही थे जिन्होंने रामके लिये अपने प्राण ही दे डाले। यह सुनकर तो उसके कान खड़े हुए और उसके पूछनेपर अंगदने सारी घटनाएँ सुनाकर कहा कि यदि तुम सीताका कुछ अता पता जानते हो तो बता दो।

यह सुनकर गृध्र सम्पाति प्रसन्न होकर बोला- 'देखो, जटायु मेरा सगा भाई था। आज सहस्रों वर्षोंपर मुझे उसका समाचार मिल पा रहा है। अवश्य आप लोगों की सहायता करूंगा। पहले भाई को जलाञ्जलि देने के लिये मुझे तुम जल के पासतक लिवा ले चलो। समुद्र तटपर पहुँचकर सम्पातिने स्नान करके अपने भाई जटायुको जलाञ्जलि दी और वानर फिर उसे उसके स्थानपर लिवा ले आए। वहाँ बैठकर सम्पातिने बताया कि त्रिकूट पर्वतपर लंका नामकी नगरी में सीता अशोक वन में राक्षसियों की देखरेख में रह रही हैं। वह लंकापुरी यहाँसे सौ योजन दूर समुद्रके बीचमें है। गृध्र होने के कारण मैं दूरतक देख पा सकता हूँ। अत: आप लोगों में से जो भी कोई सौ योजन समुद्रको लाँघ सकता हो वही सीताको देखकर आ सकता है। क्या करूँ, मेरे तो पंख नहीं रहे, नहीं तो मैं अपने भाईको मारनेवाले उस दुरात्मा रावणको अकेला ही मार पाता। अब आप लोग विचार कर लीजिए कि आप लोगों से कौन ऐसा समर्थ है जो समुद्र लाँधकर लंका जाकर सीतासे मिलकर लौट सकता है।

जब वानरोंने सम्पातिसे उसकी रामकहानी पूछी तब सम्पाति सुनाने लगा कि जवानी में एक बार हम दोनों भाई लपककर सूर्य की ओर उड़ चले। जब जटायु जलने लगा तब मैं उसे अपने पंखोंसे ढककर ऊपर कूदने लगा। अन्तमें सूर्य की किरणोंसे पंख जल जानेपर मैं विन्ध्याचलके शिखरपर गिरकर भूमिगत हो गया। नेत्र खोलनेपर देखता क्या हूँ कि मैं चन्द्रमा मुनीश्वरके आश्रममें पहुँचा बैठा हूँ। अपनी कथा सुनाकर मैने उनसे कहा कि मैं पंखोंके बिना नहीं जी पाऊँगा, इसलिये मैं आगमें जल मरता हूँ। दयालु मुनिने मुझे तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर कहा कि त्रेता युगमे जब भगवान् अवतार लेंगे और रावण उनकी पत्नीको हर ले जायगा, तब उन्हें ढूंढते हुए वानर तेरे पास समुद्र-तटपर आवेगे। तब तू उन्हें रावणका ठिकाना बता देना, तभी तेरे नये पंख भी निकल आवेंगे। यह देखो, मेरे शरीरपर कोमल कोमल नये-नये पंख निकलने भी लगे है। अब मैं तो जा रहा हूँ। आप लोग सीताजीको अवश्य खोज लेंगे। यह कहकर सम्पाति उड़ गया।

**समुद्र कौन लाँधे?**

सम्पातिकी बात सुनकर सब विचार करने लगे कि समुद्र कैसे लाँधा जाय। अंगदने सबसे पूछा कि जो भी समुद्र लाँधकर जायगा वह हम सबको प्राण-दान करेगा। यह सुनकर सब अपने पराक्रमका वर्णन करने लगे पर कोई भी दस योजनसे अधिक लांघनेको नहीं बढ़ सका। जाम्बवान्ने भी कहा कि जब भगवान्ने त्रिविक्रम (वामन) अवतार लिया था तब मैंने पृथ्वीके बराबर उनके चरणके इक्कीस चक्कर लगा लिए ये किन्तु अब तो मुझसे समुद्र लांघा नहीं जा पावेगा। अंगदने कहा कि मैं पार तो जा सकता हूँ पर लौट पाऊँगा या नहीं, यह नहीं कह सकता। तब जाम्बवान्ने हनुमान्जी से कहा कि आप क्यों चुप्पी साधे बैठे हैं? आप तो पवनपुत्र हैं। बालकपन में ही सूर्यको पका फल समझकर उसे लील जानेके लिये आप पाँच सौ योजन ऊपर कूद उछले थे। अतः, अब आप ही यह राम-कार्य करके हम सबकी रक्षा कीजिए। यह सुनना था कि हनुमान गरजकर पर्वताकार हो गए और बोले कि कहो तो मैं समुद्र लांधकर, लंका भस्म करके, कुल-सहित रावणको मारकर जानकीको ले आऊं, या कहो तो रावणके गले में रस्सी डालकर, त्रिकुट पर्वत-सहित लंकाको बाएं हाथपर उठाकर रामके आगे ले जा पटक दूँ, या केवल जानकीको ही देखकर चला आऊँ। जाम्बवान् ने कहा कि तुम केवल जानकीजीको देखकर ही लौट आओ। यह सुनकर हनुमान् ने महेन्द्र पर्वतपर चढ़कर विराट रूप धारण कर लिया।

**॥ किष्किन्धाकाण्ड पूर्ण॥**

---

**'शेषत्वसमीक्षा' का पृ. 37 से शेषांश-**

गुरु-प्रदत्त मन्त्र जो महाभारत (आदिपर्व, 58) से उद्धृत माना जाता वह इस प्रकार है-

**आस्तीकेति वचः श्रुत्वा सर्पो यो न निवर्तते।**
**शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा॥**

इस मन्त्र का 21 बार पाठ कर अक्षत या सरसो को अभिमन्त्रित कर छिड़क लें। थोड़ी ही देर में समय मिलने पर शेषशावक घर छोड़ देगा। पर बुद्धिजीवी होने का दम्भ करनेवाले लोग मन्त्र पर विश्वास ही नहीं करते हैं।

मिथिला में नागपञ्चमी पूजन दो दिनों का होता है- श्रावण कृष्ण पंचमी तथा श्रावण शुक्ल पञ्चमी, जो इस वर्ष 2020 ई. में क्रमशः 10 जुलाई तथा 25 जुलाई को है। उक्त दोनों तिथियों में शेष भगवान् का श्रद्धा-विश्वास के साथ पूजन कर सर्वविध लाभ प्राप्त करें।

ध्यातव्य है कि वास्तुपूजन, कालसर्पदोष, धन-धान्य एवं सन्तति-प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के नागस्तोत्रों की रचना की गयी है। भागवत, महाभारत, स्कन्दपुराण, पद्मपुराणादि में इसकी विस्तृत चर्चा है। सारांश यह है कि मानवजीवन का सर्वोपयोगी नागपूजन सर्वथा शाश्वत हितकारी है।

शेषो विजयतेतराम्।

***

# विश्वकवि तुलसीदास का लोक-समन्वय और जीवन-दृष्टि

डॉ. एस.एन.पी. सिन्हा*

विश्वकवि गोस्वामी तुलसीदास लोकपक्ष एवं समन्वय के अद्वितीय संत कवि थे। उनकी कविताओं में मानव-जीवन की समस्त भाव-दशाओं का मुखर चित्रण मिलता है। काव्यकला की दृष्टि से देखें तो सभी रसों और भावों का सफल चित्रण उनके काव्यकर्म के मूल में है। इन्हीं कारणों से उन्हें भाव-क्षेत्र का सम्राट् माना जाता है। डॉ. श्यामसुन्दर दास का मानना है कि 'मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामीजी के हृदय का एकात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं। इसी प्रकार, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मुक्त मन से उनके बारे में लिखा है- 'मानस में जहाँ हम सौंदर्य का वर्णन पाते हैं तो साथ ही उस सौंदर्य को देख कर होनेवाली प्रफुल्लता भी देखते हैं। इसी प्रकार जहाँ शक्ति है वहां प्रगति, जहाँ शील है वहाँ हर्षपुलक, जहाँ गुण है वहाँ आदर, जहाँ शोक है वहाँ करुणा, जहाँ पाप है वहाँ घृणा, जहाँ उपकार है वहाँ कृतज्ञता है; ये तुलसी के हृदय में बिम्ब-प्रतिबिंब भाव से विद्यमान है।'

संतकवि तुलसी के बारे में जो भाव विद्वानों ने व्यक्त किए हैं, उनके आधार पर तुलसी के भाव पक्ष अथवा उनके समन्वयवाद का मूल्यांकन निम्न आधारों पर किया जा सकता है-

(क) लोक जीवन का चित्रण

(ख) विभिन्न विचारों में समन्वय

(ग) अपनी समकालीन परिस्थितियों का तार्किक विवेचन

(घ) मार्मिक प्रसंगों की पहचान

(ङ) मानव जीवन के लोक कल्याणकारी पक्षों का उद्घाटन

(च) भावों की गहराई

कोई भी महान रचनाकर शून्य में सृजन कर्म नहीं करता। वह युगानुकूल युगान्तकारी विचारों के अन्वेषण के साथ ही देश-समाज की संगति उससे बिठाते हुए ही पात्रों-चरित्रों को गढ़ता है। सगुण भक्ति के शीर्षस्थ कवि तुलसी का काव्य वैश्विक चेतना के आलोक में भारतीय भाव-दशा की गाथा रचता है, जिसने अपनी ऊर्जा से पूरी दुनिया को प्रभावित किया। देखा जाए तो तुलसी के समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त जटिल थी। एक तरह से राजनीतिक संक्रमण का वह महासन्धि काल था, जब इतिहास में लोधी वंश (पठानवंश) के शासन का अन्तिम काल और मुगल शासकों बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर का संस्थापन

*भूतपूर्व कुलपति, पटना विश्वविद्यालय, पटना। बी. 92, पी.सी. कॉलोनी, लोहियानगर, पटना-20

और अभ्युदय काल था, जिसके विपरीत वह अपने देश के राजपूत राजाओं और शासकों का अवसान काल था। विद्वानों का मह है कि इन विषय रानीतिक परिस्थितियों ने सन्तकवि तुलसी के भावुक हृदय पर गम्भीर प्रभाव डाला। उनको प्रजापालन में तत्पर प्राचीन रघुवंशी राजाओं का आदर्श स्मरण हो आया और उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े-

**'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी।'**

अपने आदर्श को मूर्त रूप देने के लिए कवि तुलसी ने एक कथा का आधार ग्रहण किया, जिसके द्वारा वे सामाजिक जीवन में समन्वय की प्रकृति को बढ़ावा देते हुए समरस समाज का आदर्श प्रस्तुत कर सकते थे। उन्होंने सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में समन्वय स्थापित कराते हुए जन-जीवन में व्याप्त घोर अशांति, पापाचार, अनाचार को दूर कर सकते थे। उन्होंने रामचरितमानस 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली' में कलियुग के रूप में राज्य एवं समाज का जो चित्रण किया, वह सब उनके समय की दुर्दशा का जीवंत वर्णन मात्र है। उनके निम्नलिखित कथन तत्कालीन शासन और शासक वर्ग के प्रति उनकी खीक्ष को ही उद्घाटित करते हैं-

**'गोड़, गँवार, नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।**
**साम न दाम न भेद अब, केवल दंड कराल।'** (दोहावली से)
**'नृप पाप परायन धर्म नहीं करि दंड बिडंव प्रजा नितहीं।'** (रामचरितमानस से)
**'काल कराल नृपाल कराल व राज समाज बड़ोई छली है।'** (कवितावली से)

कहतें हैं, राजीतिक परिस्थितियों के छिन्न-भिन्न हो जाने से सामाजिक परिस्थितियों का विषम हो जाना सहज स्वाभाविक है। तुलसी के समय युगल साम्राज्य के विस्तार के साथ इस्लाम धर्म का भी प्रसार हो रहा था। रावण राज्य के बहाने सन्त तुलसी ने राक्षसी अत्याचारों से युक्त राज्य-व्यवस्था का ही चित्रण किया है-

**'जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहि वेद प्रतिकूला।।**
**जेहि जेहि देस धेनु द्विज पाबहिं, नगर गांउ पुर आगि लगावहिं।'**

इधर, हिन्दू समाज की यह स्थिति थी कि भारतवर्ष की प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था प्राय: ध्वस्त हो रही थी। संयुक्त परिवार का ढाँचा ढहने लगा था। इस स्थिति का चित्रण उन्होंने बड़े ही दर्द भरे स्वर में किया है-

**'बरन धरमु गयो, आश्रम निवास तज्यो, त्रासन चकित सो परावनी परो सी है।'** (कवितावली)
**'बरन धरम नहिं अत्याचारी। श्रुति विरोधरत सब नर नारी।'**

समाज में सर्वत्र अराजकता का माहौल था। एक प्रकार से समाज संक्रमणकाल से गुजर रहा था। 'रामचरित्रमानस' के 'उत्तरकाण्ड' में तुलसी ने कलियुग वर्णन के बहाने अपने समय की दुर्दशा का जीवंत चित्रण किया है-

**'सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।।'**
**'निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी सो बिरागी।।'**

'कवितावली' में भी एतत् संबन्धी वर्णन मिलता है, जो अपने समय पर एक जाग्रत कवि की सजग दृष्टि सामने लाती है–

**'बनिक को न बनिज चाकर को न चाकरी।**
**कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी।।'**

खण्ड–खण्ड हो रहे देश–समाज और लोगों के नैतिक पतन को देख कवि मन करुणा विगलित हो उससे मुक्ति की राह का अन्वेषण करता है। वे समाज को टूटने से बचाने और लोगों के नैतिक पतन को भी आदर्श की ओर ले जाने की चुनौती से आहूत हो अपने कविकर्म के दायित्व में लगे रहे हैं। वे देश और समाज को भावसमृद्ध करना चाहते थे।

सन्तकवि तुलसी के काव्य में भाव पक्ष का आकलन विशेषकर मार्मिक स्थलों की पहचान कर हम उनकी समाज–चेतना की पड़ताल कर सकते हैं। देखा जाए तो कवि की भावुकता की पहचान दो लक्षणों द्वारा की जाती है। मार्मिक स्थलों का विस्तृत वर्णन और वर्ण्य विषय के साथ कवि हृदय का तादत्म्य। संतकवि तुलसी ने रामकथा में आने वाले मार्मिक प्रसंगों के पहचानते हुए उसका मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। तुलसी द्वारा वर्णित रामकथा के अन्तर्गत हमें ऐसे स्थलों का वर्णन विस्तार में मिलता है, यथा– जनकवाटिका में राम–सीता का परस्पर दर्शन, राम वनगमन, दशरथ का निधन प्रसंग, भरत की आत्मग्लानि, वन गमन मार्ग में राम–लक्ष्मण–जानकी के प्रति नर–नारियों की सहानुभूति, चित्रकूट में राम–भरत का मिलाप, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को बाण लगने पर राम का विलाप, सीता की अग्नि परीक्षा आदि। ये सभी ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं, जिनसे कवि तुलसी की कोमल भावना का निदर्शन होता है। इन प्रसंगों में चित्रकूट में राम–भरत का मिलन 'मानस' का सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग है, जिस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है, वह शील और शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का अद्वितीय मिलन है। इस मिलन में संघटित उत्कर्ष की दिव्य प्रभा देखने योग्य है। वह झाँकी अपूर्व है। शील से पूर्ण उस समाज को देखकर सभी वनवासी भी सात्त्विक वृत्ति में लीन हो गए। चित्रकूट मिलन के प्रसंग में तुलसी ने नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि उदात्त वृत्तियों का जो मनोयोगपूर्ण वर्णन किया है, वह सर्वथा अपूर्व एवं स्पृहणीय है। इसमें भारतीय शिष्टता एवं संस्कार–सभ्यता का अपूर्व चित्र उपस्थित किया गया है। इसमें धर्म के विविध स्वरूपों की जो योजना तथा हृदय के उदात्त भावों की उद्‌भावना की गई है, वह 'रामचरितमानस' सदृश तुलसी के उदार मानस में ही सम्भव थी।

गोस्वामी तुलसीदास ने मानव जीवन की प्रत्येक स्थितियों का भावपूर्ण चित्रण किया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि उनको भिन्न–भिन्न स्वभावों और रुचियों के मनुष्यों का कितना गहन ज्ञान था। वे कितने सूक्ष्मदर्शी थे। किस अवसर पर मन में कौन–सी बात उपजती है, इसका प्रत्याभास उन्हें भली भाँति रहता था। समय–अवसर अनुकूल भाव–चित्रण में उन्हें अद्‌भुत दक्षता प्राप्त थी, जो जीवन को अत्यन्त करीब से गहरे के फलस्वरूप ही प्राप्त हो सकती है। इतना ही नहीं, उनके काव्य–संसार में सभी रसों की सरिता प्रवाहित होती जान पड़ती है। आलम्बन भेद से रति के कई भेद होते हैं– वात्सल्य, भवित, दाम्पत्य, सौहार्द आदि। तुलसी के

काव्य में समस्त भेदों के सर्वांगपूर्ण और अत्यन्त सफल चित्रण मिलता है, जो अपनी सरसता से पाठकों को गद्‌गद कर देता है। ये सब करते हुए भी अन्त में मातृभूमि के प्रति राम के प्रेम का चित्रण करके तो जैसे कवि ने मानो प्रेम-पद्धति को संपूर्णता प्रदान कर दी है-

**'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना, वेद-पुराण-विदित जग-जाना।**
**अवध सरिस प्रिय मोहिं नहिं सोऊ, यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥**

* * *

**अति प्रिय मोहिं इहाँ के वासी, मम धामदा पुरी सुख रासी।'**

दाम्पत्य-जीवन का गोस्वामीजी ने डूबकर चित्रण किया है, उसकी मर्यादा और सौंदर्य भाव का विशेष ध्यान रखते हुए। उसमें लोक मर्यादा का भी वहीं उल्लंघन नहीं दिखता। इसका रहस्य यह है कि तुलसी संयोग शृंगार का चित्रण करते समय नायक-नायिका के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी साथ लेकर चलते हैं। जनक-वाटिका के प्रसंग में लक्ष्मण के प्रति राम के मन में उत्पन्न क्षोभ का चित्रण करके वह मानो रतिभाव को सर्वथा उज्ज्वल और पवित्र बना देते हैं। एतद्‌विषयक आचार्य शुक्लजी की टिप्पणी अत्यन्त सार्थक है कि वह प्रेम कर्मक्षेत्र से अलग नहीं करता, उसमें बिखरे हुए काँटों पर फूल बिछाता है।

कवि तुलसी ने वीररस का वर्णन-कौशल तीन शैलियों में समाहित दिखाता है- (क) प्राचीन राजपूत काल के चारणों की छप्पय वाली ओजस्विनी शैली (ख) मुक्ताकार कवियों की दण्डक वाली शैली तथा (ग) अपनी निज की गीतिका वाली शैली के भीतर। युद्ध-वर्णन के अवसर पर उन्होंने वीभत्स रस के कई वर्णन लिखे हैं। नारद-मोह के अन्तर्गत उन्होंने हास्य रस की योजना की है। कहीं-कहीं तो उन्होंने अद्‌भुत रस की भी सुन्दर अभिव्यंजना की है। हनुमानजी जब पर्वत हाथ में लिए हुए आकाश मार्ग से अपूर्व वेग के साथ उड़े जा रहे हैं, तो उस दृश्य का मनोहारी चित्रण तुलसी ने इस प्रकार किया है- 'मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो।' बतौर आचार्य शुक्ल 'अद्‌भुत रस के इस आलंबन द्वारा गोस्वामी की वह स्वाभाविक विश्व व्यापार ग्राहिणी सहृदयता परिलक्षित होती है, जो हिन्दी के किसी और कवि में नहीं है।'

संतकवि तुलसी के काव्य में भावों की गहराई भी खूब है! विश्व प्रेम का जो आलम्बन वितान उनके काव्य में प्रदर्शित है, वह न केवल मोहित करता है बल्कि उसकी सरस आभा जन-जन के हृदय में व्याप्त दिखाई पड़ता है। शायद यही प्रेम की गहनता है, जिसने 'मानस' को अखिल विश्व में श्रम चेतना के रसिकों में व्याप्त कर दिया। जिस प्रेम का तुलसी ने निदर्शन किया है, वह अनन्य और अलौकिक है। कहना चाहिए कि वह घनघोर यावक का आदर्श प्रेम है-

**एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।**
**एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥**

मेघ के प्रति यातक का विश्वास और प्रेम मेघ के लोक हितकर स्वरूप के प्रति आप से आप है-

**जीव चराचर जहँ लगें हैं, सबको हित मेह।**
**तुलसी चातक मन बस्यौ, धन सौं सहज सनेह॥**

अपने आराध्य के प्रति तुलसी के प्रेम की अनन्यता और समर्पण ठीक ऐसा ही तो है–

**जौं जगदीस तो अति भलो, जो महीस तौ भाग।**
**तुलसी चाहत जनम भर, रामचरन अनुराग॥**

सन्तकवि तुलसी के प्रेम का विरह पक्ष भी निराला है। यह कर्म में प्रवृत्त करके लोक का भार उतारने वाला विरह है। राम के प्रति सीता के विरह का जो वर्णन तुलसी ने किया है, उसमें गंभीरता के साथ–साथ प्रेम की अनन्यता, विश्वास आदि कई भाषों की गहरी व्यंजना दिखाई पड़ती है। दशरथ की मृत्यु के समय का जो शोक वर्णित किया है, वह शोक सर्वव्यापी एवं सर्वग्राही है। इस शोक की गंभीरता उस समय साकार हो उठती है, जब शोकाकुल नृपति दशरथ प्राण त्याग देते हैं और समस्त अयोध्यावासी शोक के सागर में मग्न हो जाते हैं–

**लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी॥**
**घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥**
**करि विलाप सब रोबहिं रानी। महा बिपति किम जाइ बखानी॥**
**सुनि बिलाप दुखहू दुख भागा। धीरजहूँ कर धीरजु भागा॥**

ऐसे अनेकशः भावों के चित्रण को वितान तुलसी–काव्य में है, जिसके अवगाहन से जन का रस सिंचन होता है।

वास्तव में, गोस्वामी तुलसीदास लोक समन्वय के कवि हैं, जो छोटे–छोटे व्यापार के समाहार से विश्व व्यापार का कैनवास रचते हैं और जहाँ तमाम प्रकार की भिन्नताएँ एकमेव हो समरस समाज की रचना करते हैं। तुलसी बड़े कवि इसलिए नहीं है कि वे प्रेम, सौंदर्य, समरसता एवं सद्भाव का विस्तार करते हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने भारतवर्ष के बिखराव को समय रहते पहचान कर करुणा, न्याय और प्रतिरोध का ऐसा वितान रचा, जिसके प्रभाव लोक से जन–जन ने एकता और प्रेम का मन्त्र पाया। यही वह मन्त्र है, जिसने न केवल भारत बल्कि विश्व के अनेक देशों में भारतीय जन की पीड़ा और दलन–शोषण को सोख कर उसे एकता के प्रेम में जीना सिखाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ब्रिटिश सत्ताकाल में भारतीय जन गिरिमिटिया लेबर के रूप में जिन–जिन मुल्कों के द्वीप में ले जाए गए, वहीं उन्होंने अपनी तमाम थकान और शोषण से उबरने के लिए 'मानस' का सहारा लिया और जिसने उन्हें एक नई उर्जा से लबरेज करते हुए एकता के प्रेम में मजबूती से बाँधे रखा। इन्हीं कारक शक्तियों के कारण सन्तकवि तुलसीदास भारत की सीमा से निकलकर पूरे विश्व में विस्तार ग्रहण कर लिया। तुलसी के 'मानस' ने विश्व कल्याण के निमित्त जो मन्त्र दिया, वह आज भी प्रासंगिक है–

**परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।**

विश्वकवि तुलसीदास ने अपने इसी मन्त्र के आधार पर रामराज्य की परिकल्पना की, जिसने जन–जन में प्रेम और विश्वास के भाव को घनीभूत किया। इस परिकल्पना से वे समाज के अंतिम पंक्ति में थके–हारे मनुष्य को भी मुख्यधारा से जोड़ते हुए उसके कल्याण की अवधारणा सामने रखी। विश्व में अनेक विश्व

मानव हुए जिन्होंने करुणा, प्रेम, समता, न्याय और स्वतन्त्रता की आधारभूत उद्‌भावनाओं से अन्तिम जन के उत्थान का आदर्श रखा, जिनमें सन्त कवि तुलसी भी थे। पहले ही कहा जा चुका कि वे एक संक्रमण काल में अवतरित हुए थे, जिस समय नाना प्रकार की विषमताएँ काम कर रही थीं। मनुष्य तो मनुष्य, सनातन धर्म पर भी काले बादल मँडरा रहे थे। कवि तुलसी ने उन तमाम विरूपताओं से प्रतिरोध दर्ज करते हुए अपनी लोक कल्याणकारी भावनाओं के आधार पर जन-जन का विश्वास अर्जित करते हुए ही रामराज्य की अवधारणा सबके सामने रखी। अंगरेजी के विद्वान सर जी.ए. ग्रियर्सन ने तुलसी के बारे में यों ही नहीं लिखा कि भारत के इतिहास में तुलसी के बारे में भले ही नहीं लिखा कि भारत के इतिहास में तुलसीदास के विषय में इदमित्थं नहीं कहा जा सकता है।

तुलसीदास की महत्ता को विश्व साहित्य के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। हरिऔधजी ने तो यहाँ तक लिखा कि 'कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।' प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद का मानना है कि गोस्वामीजी द्वारा प्रणीत अकेला 'रामचरितमानस' ही उन्हें विश्वकवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है। उन्होंने यह भी लिखा -

**राम छोड़कर और की, जिसने कभी न आस की।**
**रामचरितमानस कमल, जय हो तुलसीदास की।।**

इसी प्रकार पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसी की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा कि 'लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी है।'

समासतः कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास न केवल भारतीय साहित्य अपितु विश्वकविता के श्रेष्ठ कवि हैं, जिन्होंने विविधता में एकता का मन्त्र भरते हुए लोक-समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो 'यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखनेवाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है तो उनका एकमात्र उत्तर यही ठीक होगा कि भारत-हृदय, भारती-कंठ, भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास।' आचार्य के इस मत से सहमत होते हुए अन्ततः कह सकते हैं कि जहां की हजारों नर-नारी रसमग्न होकर सिर हिलाते हुए और आनन्दाश्रु बहाते हुए दिखलाई देते हैं, हम समझ जाते हैं कि वहाँ तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की कथा हो रही है।

***

# भारतीय गुरु-शिष्य-परम्परा पर पाश्चात्त्य संस्कृति का आघात

डॉ काशीनाथ मिश्र*

**भारतीय संस्कृति में ज्ञान को ही मोक्ष कहा गया है। जहाँ अज्ञानता बन्धन है और ज्ञान मुक्ति है, वहाँ विद्या निश्चित रूप से योग है। पाश्चात्य जगत् विद्या को भोग का साधन मानती है। इसी भोगवाद और योगवाद के द्वन्द्व में 19वीं शती की पराधीनता के दुष्परिणाम के रुप में सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप भोगवादी संस्कृति से प्रभावित हुआ। हमारी प्राचीन परम्परा हमसे दूर कर दी गयी। इसी द्वन्द्व को लेखक ने इस आलेख में अपनी वाणी दी है। फिर भी, आज हम स्वतन्त्र हैं; हमें अपनी संस्कृति की परम्परा को पुन:स्थापित करने का मौलिक अधिकार है। हम उसी दिशा में प्रयत्नशील हों, यह आज के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है।**

भारतीय मनीषियों ने जिस गुरु परम्परा का प्रतिस्थापन किया, उसमें शिष्य त्याग, तप, बल पाकर, मनुष्यत्व से ईश्वरत्व की ओर प्रयाण कर, इहलोक से परलोक तक का मार्ग प्रशस्त करते थे। भारतीय संस्कृति में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश, अर्थात जन्म देनेवाले, पालन करनेवाले एवं परलोक का मार्ग प्रशस्त करनेवाले के अनुरूप, सर्वशक्तिमान् निर्माता के रुप में चिह्नित किया गया है। गुरु की कृपा से ही सन्त तुलसीदास ने परब्रह्म परमेश्वर का वर्णन करने में सफल हुए और उन्होंने अपनी कालजयी रचना 'रामचरितमानस' के माध्यम कहा–

**श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।**
**सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥**

पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय गुरु शिष्य परम्परा पर आघात पहुँचाकर इसे प्रभावित किया। परिणामस्वरूप, आज इसका विकृत स्वरूप उपस्थित हुआ है। एक ओर जहाँ 'गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं' की अवधारणा है, वहीं दूसरी ओर कुछ पैसे के बदले शैक्षिक समस्या के समाधान करने की परिस्थिति उत्पन्न हो जाने से पश्चिमी देशों में प्रचलित शिक्षकों एवं छात्रों के बीच व्यावसायिक सम्बन्ध पलने लगे हैं, जिसमें श्रद्धा भक्ति एवं स्नेह का लेस मात्र नहीं है।

आज इस पहलू पर विचार करने की आवश्यकता है कि किस प्रकार भारत की गौरवपूर्ण गुरु शिष्य-परम्परा को पाश्चात्य संस्कृति के आघात से बचाया जा सके ।

भारतीय शास्त्रकारों ने कहा है कि मनुष्य की अज्ञानरूपी मलिनता को दूर करने की शक्ति साक्षात् परमेश्वर में है। इस कारण वे जिस शरीर के आश्रय

* उच्चतर माध्यमिक शिक्षक, 'विद्या भारती' अखिल भारतीय शिक्षण संस्थान, सरस्वती विद्या मंदिर, शास्त्रीनगर, मुंगेर।

में प्रकट होते हैं उस शरीर को गुरु अर्थात परमेश्वर कहते हैं। तभी तो कहा है-

**अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।**
**तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥**

सिख-पन्थ के अनुयायी गुरु की आराधना करते हैं और मानते हैं कि ईश्वर से एकाकार का माध्यम गुरु ही है। जिस प्रकार भक्त के बस में होकर भगवान् अन्य कार्य छोड़कर भक्तों की इच्छापूर्ति में लग जाते हैं, ठीक उसी तरह भारतीय परम्परा में गुरु अपने शिष्य के भक्ति-स्वरूप उन्हें स्वयं से भी श्रेष्ठ बनाने में स्वयं को समर्पित कर देते हैं और स्वयं को धन्य समझते हैं।

पाश्चात्य उपभोक्तावादी संस्कृति एवं भोगवादी विचारधारा वहाँ के शैक्षिक मूल्यों की अवधारणा को लेन-देन की प्रक्रिया से जोड़ता है। वहाँ जीवन का परम ध्येय अधिकतम भौतिक सुख प्राप्त करना है। यही कारण है कि चारित्रिक पतन के साथ अनेक समस्याओं का वहाँ जन्म हुआ, फलतः आश्रयहीन बच्चे, महिलाएँ एवं बुजुर्गों की संख्या बढ़ी। इन समस्याओं के निदान के लिए अनाथालय एवं वृद्ध आश्रमों का जन्म हुआ, जिन्हें कन्वेंट कहा गया। अनाचार एवं अनैतिक सम्बन्धों ने भी अनेक रोगों को जन्म दिया। यदि जड़ में पहुँचा जाए तो पता चलेगा कि इसका मूल कारण शिक्षा एवं शिक्षकों में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की कमी रही है।

भारतीय अवधारणा "सर्वभूतहिते रताः" की रही है। तभी तो वेदों में निहित हमारे सार्वभौम सिद्धान्त- ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ्शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरौषधयः शान्तिः इत्यादि को जर्मनी, जापान, इंग्लैंड, अमेरिका-जैसे देशों ने स्वीकारा और अपनाना आरम्भ किया है। साथ ही, अपने यहाँ संस्कृत एवं वेद की शिक्षा को भी स्थान दिया है।

दुःखद पहलू यह है कि परिवर्तन के दौर में हम पाश्चात्य गुरु-शिष्य-परम्परा, शिक्षण-विधि एवं उनके जीवन-शैली के प्रभाव से वंचित नहीं रह पाये। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी हमारे शिक्षकों एवं शैक्षिक मूल्यों को निर्धारित करनेवाले अंग्रेज मैकाले ने जिस विष का बीज बोया, आज उसका परिणाम समाज में कई रूपों में देखा जा सकता है। हमारा प्राचीन नैतिक मूल्य 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'(तैत्तिरीयोपनिषद) आज लुप्त-सा हो गया है। माता-पिता अपनी सन्तानों द्वारा अपमानित हो रहे हैं। गुरु शिष्य द्वारा अपमानित हो रहे हैं। आज ऐसे उदाहरण मिल रहे हैं कि अकेले लाचार वृद्ध घर में मर जाते हैं एवं पुत्र 6 महीने बाद पाश्चात्य देश से खबर लेते हैं और उस वृद्ध का कंकाल घर में बंद पाया जाता है। यह पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित भौतिक सुखों में पागल जीवन शैली का ही प्रभाव नहीं तो और क्या है।

आज सिनेमाघरों एवं टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रमों में भी शिक्षकों के पात्र को सम्मान स्वरूप नहीं दिखाया जाता है। उदाहरण अनेक है, जहाँ शिक्षकों को हँसी का पात्र, एवं उपहास करनेवाले शिष्य को नायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह भी पश्चिमी विचारधारा का ही प्रभाव है। आज शिक्षकों का तात्पर्य 'मास्टर दीनानाथ' से है, एक ऐसी तस्वीर से है, जो समाज का निर्माता नहीं; बल्कि लाचार अभावग्रस्त गरीब का पर्याय मात्र है। तो फिर आज के गुरु नवयुवकों के आदर्श कैसे बने।

कालान्तर में पश्चिमी सभ्यता के माध्यम से एक और विकृति भारतीय परम्परा में प्रविष्ट हुई, वह

शिक्षा के उद्देश्य से सम्बन्धित है। वहाँ शिक्षा का उद्देश्य अर्थोपार्जन रहा है न कि ज्ञान। फलतः भारत में भी 'सा विद्या या विमुक्तये', के रूप में प्रतिष्ठित, मुक्ति प्राप्त करने का साधन विद्या आज एक किताबी सूक्ति मात्र रह गयी है। आज के गुरु सत्य, तत्त्वज्ञान एवं आत्मज्ञान का नहीं, बल्कि रोजगार की बात करते हैं। प्रबन्धन एवं व्यापार-जैसे विषयों की पढ़ाई सत्य के बल पर नहीं, बल्कि झूठ के बल पर ही चलता है। गाँधीजी ने भी कहा था- 'वकालत झूठों का पेशा है'।

भारतीय परम्परा में तो गुरुओं ने राम, कृष्ण, अर्जुन, शंकराचार्य, विवेकानन्द-जैसे शिष्यों का निर्माण किया। आचार्य चाणक्य ने तो एक सामान्य बालक को संकल्पित होकर चक्रवर्ती राजा बनाकर संदेश दिया कि गुरु के गर्भ में निर्माण एवं प्रलय दोनों निवास करते हैं। हमारे प्राचीन स्वतन्त्र भारत के गुरु आश्रमों, मठों, एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा व्यवस्था से राष्ट्र का निर्माण करते थे। यहाँ साहित्य, व्याकरण, धर्म दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, नक्षत्र विज्ञान, औषधि विज्ञान, शल्य-चिकित्सा, व्यापार एवं कृषि आदि की शिक्षा दी जाती थी। उसका उद्देश्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति को सुदृढ़ करना एवं राष्ट्र का विकास करना होता था। स्वतन्त्र भारत में कितने सक्षम, सम्पन्न, सुसंस्कृत और मूल्यों पर स्थिर रहनेवाले शिक्षक एवं उसी के अनुरूप शिक्षण-पद्धति थी।

वास्तव में मैकाले ने भारत में शिक्षातन्त्र को अपने लक्ष्य के अनुरूप ऐसे ढाला कि शीघ्र ही यहाँ के लोग भारतीय मूल्यों, संस्कृति, परम्पराओं और आदर्शों को हीन समझने लगे और अंग्रेजी तथा अंग्रेजियत के रंग में रंग गये। आज के तथाकथित अंग्रेजी माध्यम के मिशनरी तथा कन्वेंट विद्यालयों से पढ़ें छात्र-छात्राएँ माता-पिता एवं गुरुजनों का चरण स्पर्श करना भी रूढिवादी परम्परा समझते हैं। भारत में बड़े-बूढ़े लोग, युवाओं की इस प्रकार की उपेक्षा का शिकार पहले नहीं थे। पाश्चात्य शिक्षाजनित मूल्यों ने युवाओं को पीढ़ियों के अन्तराल के नाम पर बड़ों की अवज्ञा करना सिखा दिया है।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। तेजी से अपने मूल्यों को खोनेवाला समाज फिर अपने आदर्शों की ओर लौटेगा। अपनी आदर्शवादी गुरु शिष्य परम्परा की पुनःस्थापना कर हम समाज का निर्माण करेंगे। आशावादी होकर अपना सर्वोत्तम योगदान देते हुए गुरुजनों को मूल्य आधारित शिक्षा के माध्यम समर्थ, स्वस्थ एवं समृद्ध राष्ट्र के निर्माण हेतु अग्रसर होना होगा। चिन्तकों एवं विचारकों ने संस्थाओं, साहित्यों, पत्र-पत्रिकाओं, धार्मिक शिविरों एवं दृश्य-श्रव्य-साधनों द्वारा भी प्राचीन नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना हेतु अभियान आरम्भ किया है। आशा एवं विश्वास है कि हम पुनः प्राचीन गुरु-शिष्य-परम्परा में निहित गुणों को स्थापित कर पाएँगे।

★★★

**गुरुतत्त्व पर विशेष अध्ययन हेतु धर्मायण के विगत अंक ( अंक संख्या 96 ) का अवलोकन करें।**

# वैशाली में 'सावनी-घरी' लोकपर्व

श्री अभिषेक राय*

**यह लोकपर्व व्यापक क्षेत्र में मनाया जाता है। यहाँ वैशाली क्षेत्र की एक परम्परा संकलित है। इसे लेखक श्री अभिषेक राय ने अपने घर की महिलाओं सुनकर से संकलित किया है। जिसमें लोकदेवी बीनी तथा देवता गोरैया की पूजा होती है। विलियम क्रुक्स ने गोरैया को गाय-भैंस आदि पालतू पशुओं का रक्षक देवता माना है। ( - Crookes, William, Religion And Folklore Of Northern India, London, 1926, p. 132. )**

श्रावण मास में एक विशेष लोकपर्व है- श्रावणी घरी। इसमें कुलदेवता को खीर का भोग लगाया जाता है। साथ ही, हनुमानजी की ध्वजा की भी पूजा होती है। यह पर्व दो दिन मनाया जाता हैं। वैशाली की परम्परा में श्रावण मास के शुक्लपक्ष के पहले बुधवार या शनिवार को इसका आयोजन किया जाता है। इस दिन लोकदेवताओं की पूजा होती है। यहाँ इस सावनी घरी में बीनी और गोरैया लोकदेवता की पूजा इस प्रकार होती है

इसमें चौदह जोड़ा दाल की पूड़ी, विना मक्खन निकाले दूध से खीर बनता है तथा अन्य पकवान भी विना चीनी डाले बनाया जाता है। ये सब देवता को भोग लगाये जाते हैं। इसमे ओढुल फूल की माला तथा बताशा का विशेष महत्त्व है। देवता के आगे बाँस की बाँसुरी भी अर्पित किया जाता है। आँगन में हनुमानजी का ध्वज गाड़ा जाता है। घर के अन्दर देवी के स्वरूप में बीनी की पूजा तथा द्वार पर पुरुष देवता के रूप में गोरैया की पूजा होती है। पूजा के बाद यह प्रसाद घर-घर वितरित किया जाता है।

## बीनी गीत

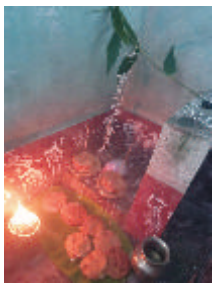

बिनी दुअरिया माई हे ओढ़हुल केर गछिया हे फरे फुलल उमरल डार हे २
उतरहि राज से जे सुग्गा एक आयल हे बैठल सुग्गा ओढ़हुल केर डार हे २
बड़ी बड़ी फुलवा के सुगवा धरती लोटायल रे
छोटे फूल के सुगवा कएलक आहार रे
जुनी सुगवा मारिहे रे बहेरिया जुनी गरियइहे रे
सुगवा बोलल बैद्यनाथ रे सुगवा बोलल श्रीराम रे।

## गोसाइ गीत

सात गो घोड़वा हे गोसाइ सातो असवार हे
अगिला हे घोड़वा गोसाइ बीनी असवार हे,
घोड़वा चढ़ल गोसाइ करथिन पुकार हे कओने वासे अवासे सेवका हमार रे
घोड़वा के बाहु गोसाइ चानन गाछ लगाइ अपने पैसलन गोसाइ गहबर पास
मारबौ सटकुनिया रे सेवका होएबे सकाचुर उठि दीप लेसिह रे सेवका गहबर रे सांझ

*ग्राम- अल्लीपुर संघतपर, पोस्ट - बखरी सुपायन, थाना- राजापाकड़, पंचायत:- भलुई, जिला :- वैशाली

घर नहि घरनी रे सेवका कओने विधि घुसब रे साँझ,
कओन बिधी लेसव हो गोसाइ गहबर हो साँझ
घर देबौ घरनी रे सेवका उठी दीप लेसीह साँझ,
केकरा घरके सोने के दियरा केकरा घर के हो बात,
कओने घर के सरिसो के तेलवा जरायब सारी रे रात,
सोनरा घर के सोने के दियरा, तेलिया घर के सरिसो के तेल,जरायब आहो सारि रात,
जरे लागल दियबा हो गोसाई चमके लागल हो बाग खेले लगलन पाचो दुल्हा चारो पहर हो रात,
जुआवा खेलइते हो गोसाइ गेलन उलसाइ हाथ के सटकुनिया हो
गोसाइ लेलन ओठगाई गोर के खरऊआ हो गोसाई लेलन ओठगाई,
फूलके डलियबा हो गोसाइ लेलन ओठगाई,
उची कुल्हबा हो गोसाई बाजले मयूर है गोसाई उठले जय जयकार,
खायलहुँ शंकर लड्डू अउलि खोवा हे दूध पेल्हि लहु पाटक डरिया जायब बड़ी रे दूर २,
केकरा घरके शंकर लडू केकरा घर के अउलि दूध केकरा घरके पाटक डरिया जायब बड़ी रे दूर,
हलुआइ घरके शंकर लडू गोअरवा घर के दूध पटहेरया घरके पाटक डरिया जायब रे बड़ी दूर २
लय देखु नइया नबेरिया लय देखु मलाह
कओने सुके उतरब सेवका सातो नदी रे पार, कओन बिधी उतरब सातो नदी पार,
आनि देबौ नइया नबेरिया हो गोसाइ आनी देबौ मलाह भले सुके उतरब गोसाइ सातो नदी हे पार,
कुछ नइया खेबहइ रे मलहा कुछ भसियाय २,
कुछ नइया खेबहइ रे मलहा झिझिरि हो खेलाय २,
इहो मत जनिहे ई मलहा बीनी असगर जाय,
बीनी जौरे सेवक सेविका सेहो जौरे हे जाय,
गोरैया जौरे सेवक सेविका सेहो जौरे हे जाय,
बहिया धड़इते रे मलहा होएबे जरी छाय
अचरा धड़इते रे मलहा होएबे कोढ़ी फुट,
गोर लगियओ पईया पीरयओ ननुआ सूरज,
रूसल जाई छैहि पाचो दुल्हा लहू न मनाय,
पहिले सेजे कहते सेवका लेतियउ मनाय,
रथ बरी उताबल रे सेवका जायब रे बरी दूर २,
जाय के त जाइ छहे गोसाइ जायब बरी हे दूर अपिन सेवइका जनके देले जाहु आशीष २,
देबौ आशिष रे सेवका मंनिचत लगाय छौबे मासे होतौ सेबका ऊँच कल्याण।

***

# मातृभूमि-वन्दना

(अथर्ववेद, काण्ड सं. 12, सूक्त सं. 1)

(पिछले अंक से क्रमशः)

**यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।**
**भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे॥42॥**

जहां चावल, गेहूं, जौ आदि तथा और और खाने के पदार्थ बहुत होते हैं, जहाँ विद्वान्, शूर, व्यापारी, कारीगर तथा सेवक लोग यह पाँच प्रकार के मनुष्य आनन्द से बसते हैं, जिस भूमि में नियमित समय में वृष्टि हो सम्पूर्ण धान्यादिक उत्पन्न हो, लोगों के योग्य पालन होता है, उस मातृभूमि को नमस्कार है।।42।।

**यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।**
**प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु॥43॥**

जिस मातृभूमि में देवों द्वारा बसाये अनेक नगर हैं, जिसके प्रत्येक प्रान्त में मनुष्य अनेक प्रकार के अच्छे-अच्छे उद्योगों में सदैव लगे रहते हैं, अर्थात् जो घनी बसी है, कोई भाग जिसका सूना और उजाड़ नहीं है, जहाँ सब तरह के पदार्थ पैदा होते है, उस भूमि को प्रजा का पालक पूर्ण करे अर्थात् वहाँ विद्या का अधिक प्रचार करे और वह भूमि प्राकृतिक पदार्थों तथा सौन्दर्य से सुसम्पन्न रहे ।।43।।

**निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।**
**वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना॥44॥**

जिसमें रत्न और सुवर्ण आदि की बहुत-सी खानें हैं और जो हमें उत्तम धन रत्न आदि देती है, वह मातृभूमि सदा हमें धन देनवाली हो।।४4।।

**जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।**
**सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥45॥**

अनेक प्रकार की उन्नति के धर्मों को पालनेवाले, विविध भाषा बोलनेवाले, लोगों का आश्रय देनेवाली हमारी अविनाशी मातृभूमि, जैसा गाय दूध देती है, उस तरह हजारों पदार्थों को देनेवाली हो तथा धन देनेवाली हो।।45।।

**यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये।**
**क्रिमिर्जिन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन् नः सर्पन् मोप सृपद्यच्छिवं तेन नो मृड॥46॥**

हे मातृभूमि ! तेरे विलास रूप साँप, बीछू या ऐसे जीव जिन के काटने दाह पैदा होनी है, या जो शोष उत्पन्न करते हैं, वे भयंकर विषैले जीव कभी हमें स्पर्श भी न करें, जो पदार्थ हमारे लिये हितकारी और कल्याण करनेवाले हो, वे सदा हमारे पास आ हमें सुख देवें।।46।।

(अगले अंक में जारी)

# मन्दिर समाचार

## महावीर आरोग्य संस्थान काफी सस्ते दर पर डायलिसिस की सुविधा का उद्घाटन

20 सुपर स्पेशलिस्ट विभागों के साथ लगातार बिहार के प्राय: 500 मरीजों को प्रतिदिन अपनी सेवा उपलब्ध करा रहा यह महावीर आरोग्य संस्थान खासकर आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए वरदान के समान है एवं अन्तिम पायदान पर खड़े लोगों के लिए सहायक साबित होता रहा है। अब तीन डायलिसिस मशीन की उपलब्धता के बाद साथ कुल 7 मशीनों के साथ बेहतर और सस्ते दर पर डायलिसिस की सुविधा भी उपलब्ध करा दी गई है। इस संस्थान में पहले से भी चार डायलिसिस उपलब्ध थे, लेकिन अब तीन मशीनों को उपलब्ध कराए जाने के बाद ज्यादा से ज्यादा लोगों को इसकी सुविधा मिल पाएगी। महावीर आरोग्य संस्थान सेवा भाव से स्वास्थ्य के क्षेत्र में लोगों की देखभाल करने में जुटा है। आनेवाले 2 महीने के अन्दर तीन और डायलिसिस मशीन संस्थान में लगाने की योजना हैं; ताकि बिहार के गरीब मरीजों को इसकी सुविधा मिल सके। संस्थान गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सेवा देने में विश्वास करता है। साथ ही यह प्रयास है कि बिहार के मरीजों को चिकित्सा के लिए बिहार से बाहर जाना नहीं पड़े।

## बच्चों के जन्मजात हृदय-छिद्र की निशुल्क चिकित्सा का आरम्भ

कोविड-19 के कारण लॉकडॉन होने से महावीर मन्दिर का यह संकल्प बाधित हो गया था, किन्तु अब महावीर वात्सल्य अस्पताल में इसकी व्यवस्था कर दी गयी है। इसके अन्तर्गत ऐसे बच्चों की यहाँ नि:शुल्क चिकित्सा की जायेगी, जिनके हृदय में जन्म से ही छिद्र है। पूरे उत्तर भारत में इस रोग की चिकित्सा केवल रायपुर में होती रही है। दूसरा केन्द्र महावीर वात्सल्य अस्पताल होगा, जहाँ इस जन्मजात रोग की पूरी तरह नि:शुल्क शल्य-चिकित्सा की जायेगी। इस कार्य के लिए देश के बड़े-बड़े चिकित्सकों की नियुक्ति की गयी है। महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक डा. एस.एस. चटर्जी ने इसके लिए सारी व्यवस्था कर ली है। ध्यातव्य है कि डा. चटर्जी इन्दिरा गाँधी हृदय रोग संस्थान के पूर्व निदेशक रहे हैं।

## महावीर वात्सल्य अस्पताल एवं महावीर आरोग्य संस्थान में भी भर्ती मरीजों के लिए नि:शुल्क भोजन की व्यवस्था।

महावीर मन्दिर के द्वारा महावीर कैंसर संस्थान में विगत अनेक वर्षों से भर्ती मरीजों के लिए तीन बार नि:शुल्क भोजन की व्यवस्था उपलब्ध करायी जाती रही है। इस सुविधा का लाभ लगभग 500 मरीज प्रतिदिन लेते रहे हैं। अब महावीर मन्दिर यही व्यवस्था अपने अन्य दोनों अस्पतालों महावीर वात्सल्य अस्पताल एवं महावीर आरोग्य संस्थान में कर रही है। इस कार्य के लिए श्री आर. शेषाद्रि को पर्यवेक्षक बनाया गया है।

## महावीर मन्दिर में दर्शन के लिए व्यवस्था

दिनांक 8 जुलाई को सरकारी निर्देश मिलने पर महावीर मन्दिर को भक्तों के दर्शन हेतु खोल दिया गया। भक्तों के मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व हाथ धोने के लिए हैंडवाश की व्यवस्था की गयी है। इससे आगे बढने पर सेंसर लगा हुआ स्प्रे सेनिटाइजर मशीन लगाये गये हैं। जिससे हाथ को सेनिटाइज कर श्रद्धालु आगे द्वार तक बढते हैं। द्वार पर थर्मल डिटेक्टर मशीन से उनका तापमान मापा जाता है, तब उन्हें मन्दिर में प्रवेश की अनुमति मिलती है। मास्क, गमछा से मुह एवं नाक को ढँककर रखना अनिवार्य कर दिया गया है। निर्देशानुसार मन्दिर में फूलमाला का उपयोग पूरी तरह बन्द रहा। मन्दिर की सभी घंटियों को कपड़ा से बाँध दिया गया है।

आरम्भ में कुछ दिनों तक मन्दिर में मंगलवार एवं शनिवार को प्रातः 7 बजे से 1 बजे तक तथा सन्ध्या 6 बजे से 9 बजे रात्रि तक प्रवेश हेतु महावीर मन्दिर के वेबसाइट पर ऑनलाइन बुकिंग की व्यवस्था की गयी तथा अन्य दिनों में नामानुक्रम के आधार पर प्रवेश रखा गया गया। किन्तु शीघ्र ही मन्दिर परिसर में पण्डाल लगा दिये जाने पर जब पर्याप्त जगह हो गयी तब ऑनलाइन बुकिंग की बाध्यता समाप्त कर दी गयी। अब दर्शनार्थी कोविड-19 के सामान्य नियमों का पालन करते हुए मन्दिर में सामान्य रूप से आ रहे हैं।

## विशेष औषधि युक्त चरणामृत

चरणामृत के लिए भी विशेष व्यवस्था की गयी है। इसके लिए जो स्थानों पर विशेष कंटेनर लगाये गये हैं, जो संसर लगे हुए हैं। उसके नीचे हाथ रखने पर लगभग 10 मि.ली. औषधियुक्त चरणामृत हाथ आ जाते हैं। इस चरणामृत में तुलसी के पत्ते का रस, लवंग, छोटी इलायची, जावित्री, जायफल एवं पंचकपूर (खानेवाला कपूर) मिलाया गया है।

## नैवेद्यम् की उपलब्धता

मन्दिर के परिसर में नैवेद्यम लड्डू के लिए काउंटर खुले हैं, किन्तु जो श्रद्धालु मन्दिर आने की स्थिति में नहीं है, ऐसे पटना के श्रद्धालु यदि भोग लगा हुआ नैवेद्यम् चाहते हैं तो उनके लिए होम डिलिवरी की व्यवस्था की गयी है। नैवेद्यम् का जो मूल्य काउंटर पर है, उसी मूल्य पर उन्हें घर तक पहुँचाया रहा है। इसके लिए ऑनलाइन बुकिंग की व्यवस्था की गयी है।

## व्यक्तिगत कर्मकाण्ड एवं अन्य अनुष्ठान के लिए व्यवस्था

सरकारी निर्देशानुसार दिनांक 1 जुलाई से मन्दिर में होनेवाले व्यक्तिगत वैदिक कर्मकाण्ड आरम्भ कर दिये गये हैं। दिनांक 6 जुलाई से सावन का आरम्भ है। सावन की सोमवारी में रुद्राभिषेक के लिए काउंटर पर बुकिंग आरम्भ है, किन्तु इसबार केवल दो व्यक्तियों के प्रवेश की अनुमति दी गयी है। धीरे धीरे मन्दिर में श्रद्धालुओं की संख्या बढ रही है।

***

# व्रत-पर्व

## श्रावण, 2077

**1. श्रावण प्रथम सोमवार, श्रावण कृष्ण प्रतिपदा, 6 जुलाई।**

इस दिन भगवान् शिव की आराधना तथा रुद्राभिषेक महत्तवपूर्ण माना गया है। बहुत श्रद्धालु इस दिन व्रत रखते हैं। लेकिन पहले दिन यदि व्रत करते हैं तो हर सोमवारी को व्रत करना उचित होगा।

**2. मौना पञ्चमी, श्रावण कृष्ण पञ्चमी,10 जुलाई, शुक्रवार।**

मिथिला, बंगाल, मगध एवं उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में इस दिन नागपूजा मनायी जाती है। कुछ लोग कृष्णपक्ष की पञ्चमी में मनाते हैं, कुछ लोग शुक्ल पक्ष में। जिनके परिवार में जो परम्परा हो, उसी दिन मनायें।

**3. मधुश्रावणी व्रतारम्भ ( मिथिला ), श्रावण कृष्ण पञ्चमी,10 जुलाई, शुक्रवार।**

मिथिला, बंगाल एवं उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में विवाह के पहले वर्ष नयी दुल्हन अपने मायके आकर इस दिन से 13 दिनों तक चलने वाली नाग-पूजा का अनुष्ठान आरम्भ करती है।

**4. शीतलाष्टमी ( उड़ीसा ), श्रावण कृष्ण अष्टमी 12 जुलाई, रविवार।**

शीतला देवी की पूजा इस दिन होती है।

**5. श्रावण द्वितीय सोमवार, श्रावण कृष्ण अष्टमी, 13 जुलाई।**

**6. सोमवती अमावस्या, अमावस्या तिथि एवं सोमवार दिन का संयोग, 20 जुलाई।**

यदि अमावस्या तिथि को सोमवार दिन पड़ता है तो उस दिन सोमवती अमावस्या का अनुष्ठान किया जाता है।

**7. श्रावण तृतीय सोमवार, श्रावण अमावस्या, 20 जुलाई।**

**8. मधुश्रावणी व्रत समाप्ति ( मिथिला ), श्रावण शुक्ल तृतीया,10 जुलाई, शुक्रवार।**

**9. नागपञ्चमी, 25 जुलाई, श्रावण शुक्ल पञ्चमी, शनिवार।**

इस दिन नागपूजा का वही अनुष्ठान होता है, जो कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि को होता है। इसे मगध क्षेत्र में नगपाँचो कहा जाता है।

**10. तुलसी-जयन्ती, श्रावण शुक्ल सप्तमी, 27 जुलाई, सोमवार।**

इस दिन परम्परागत रूप से गोस्वामी तुलसीदास की जयन्ती मनायी जाती है। इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है-

**संवत सोलह सै असी, असी गंग के तीर।**
**श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥**

**11. श्रावण चतुर्थ सोमवार, श्रावण शुक्ल सप्तमी, 27 जुलाई।**

**12. झूलन आरम्भ, श्रावण शुक्ल एकादशी, 30 जुलाई, शनिवार।**

इस दिन से श्रीकृष्ण झूलन आरम्भ होता है।

**13. रक्षाबन्धन, श्रावण पूर्णिमा, 3 अगस्त, सोमवार।**

इस दिन पूर्णिमा तिथि रात्रि 8 बजकर 20 मिनट रात्रि तक है। इस दिन भद्रा प्रातः 8 बजकर 28 मिनट तक है, इसके बाद रक्षाबन्धन का पर्व मनाया जाना चाहिए। इस रक्षाबन्धन का मन्त्र इस प्रकार है-

**येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबलः।**
**तेन त्वांमनुबध्नामि, रक्षे मा चल मा चल॥**

**14. श्रावणी उपाकर्म, श्रावण पूर्णिमा, 3 अगस्त सोमवार।**

**15. संस्कृत दिवस, श्रावण पूर्णिमा, 3 अगस्त, सोमवार।**

इस अवसर पर संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए कार्यक्रम मनाये जाने की परम्परा लगभग 100 वर्षों से चल रही है।

**17. श्रावण पञ्चम सोमवार, श्रावण पूर्णिमा, 3 अगस्त।**

***

## ऋग्वेद के परिशिष्ट में सर्पमन्त्र

(अधोलिखितं ऋ.सं १.१९१.१० अन्ते पठनीयम्)

**मा बिभेर्न मरिष्यसि परि त्वा पामि सर्वतः। घनेन हन्मि वृश्चिकम् अहिम् दण्डेनागतम्।**
**त्वम् अग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः॥१॥**
**आदित्यरथवेगेन विष्णोर्बाहुबलेन च। गरुडपक्षनिपातेन भूमिं गच्छ महायशाः॥२॥**
**गरुडस्य जातमात्रेण त्रयो लोकाः प्रकम्पिताः। प्रकम्पिता मही सर्वा सशैलवनकानना॥३॥**
**गगनं नष्टचन्द्रार्कं ज्योतिषं न प्रकाशते।**
**देवता भयभीताश्च मारुतो न प्लावयति मारुतो न प्लावयत्योम् नमः॥४॥**
**भो सर्प भद्र भद्रम् ते दूरम् गच्छ महायशाः। जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनम् स्मर॥५॥**
**आस्तीक वचनं श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते। शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलम् यथा॥६॥**
**अगस्त्यो माधवश्चैव मुचुकुन्दो महामुनिः। कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः॥७॥**
**नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशिनमो अस्तु नर्मदे तुभ्यन्त्राहि मां विषसर्पतः॥८॥**
**यो जरत्कारुणा जातो जरत् कन्याम् महायशाः। तस्य सर्पो अपि भद्रम् ते दूरम् गच्छ महायशाः।**
**तस्य सर्पस्य सर्पत्वम् तस्मै सर्प नमो अस्तु ते॥९॥**

***

# रामावत संगत से जुड़िए

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी; किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं; अत: विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं; अत: सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा; किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अत: भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी; किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि ॐ-जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव: पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेता:।**
**यच्छ्रेय: स्यानिश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।** (2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जों में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ इस http://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर क्लिक करना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

## कोविड-19 के कारण महावीर मन्दिर के श्रद्धालुओं की सुरक्षा हेतु किये गये उपाय

मन्दिर में प्रवेश से पूर्व हाथ धोने की व्यवस्था

सेंसर लगी मशीन से सेनिटाइजेशन

द्वार पर थर्मल स्क्रीनिंग की व्यवस्था

संक्रमण के भय से घंटी बजाना बंद

विभिन्न स्थानों पर सेनिटाइजर की व्यवस्था

संक्रमण के भय से चरणामृत हेतु विशेष व्यवस्था

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

## महावीर हृदय अस्पताल में चिकित्सा की विशेष व्यवस्थाके लिए लगाये गये आधुनिक उपकरण

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा निःशुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित